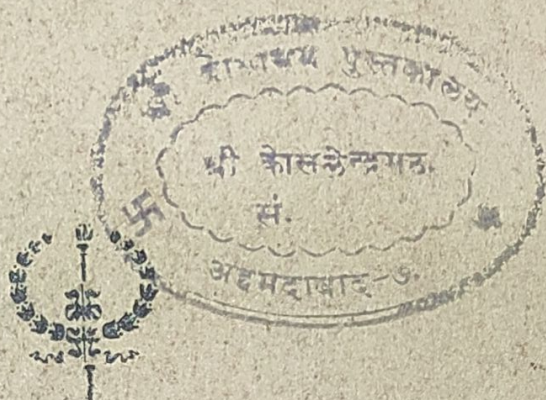


श्री वैष्णव ग्रंथमाला का तृतीय पुष्प

ॐ श्री मने रामानन्दायनमः ॐ

श्री रामाष्टयाम

प्राचीन कवि श्री नाभादासजी रचित



संपादक व टीकाकारः—

श्री १०८ श्री स्वामी राजकिशोरीवर शरणजी

(श्री स्वामी परमानन्दजी)

श्री जानकीबाद, श्री



❀ श्री ❀

स्वामी नाभाजी कृत अष्टयाम

(सटीक)

टीकाकार

अनंत श्री स्वामी सियाराम शरण (श्री तपसी) जी
महारोज के कृपा पात्र श्री १०८ स्वामी रोज
किशोरीवर शरणजी (श्री स्वामी पर-
मानंदजी) जयपुर मन्दिर रहस्य-
प्रसोद भवन श्री जानकीघाट
श्री अयोध्याजी ।

प्रकाशक:—

पं० मदन गोपाल शुक्ल (नवलकिशोर शरण)
“मदन” छतरपुर ।

सर्वाधिकार सुरक्षित ।

प्रथमावृत्ति
१०००

}

सन १९३५ ई०

}

मूल्य
॥

भूमिका ।



श्री स्वामी नाभजी कृत यह अष्टयाम पढ़ने के पूर्व पाठकों को यह समझ लेना नितान्त आवश्यक है कि भगवत-उपासना, भावुकता तथा उपासना संबंधी पंचरस अथवा पंच भाव क्या हैं और भावना किस कहते हैं, क्योंकि श्री स्वामीजी की यह रुचिर रचना इन्हीं वस्तुओं पर पूर्णतया अवलंबित है ।

उपरोक्त बातें पुस्तकालोकन से भी ज्ञात की जा सकती हैं; परन्तु सच पूछिये तो, इनका यथेष्ट ज्ञान तथा इनकी मार्मिकता का अनुभव, किसी सुयोग्य भावुक आचार्य द्वारा ही हो सकता है ।

प्राचीन काल में, शिष्यप्रशिष्य, गुरुपरंपरा द्वारा ही यह साहित्य अब तक चला आ रहा है एवं चला जायगा । अतः विस्तार-भय से इस विषय में इतना ही कहना परियाप्त समझता हूँ कि “वैसे तो पुस्तक-पठन पाठन से श्री स्वामी जी का आचार्यत्व, उपासना संबंधी पहुँच, भक्तिमयी भावुकता तथा विचित्र वर्णन-शैली का परिचय मिलता ही है, परन्तु यदि हमारे पाठकगण इस विषय को किसी भावुक आचार्य द्वारा समझ पुस्तक पढ़ने का प्रयत्न करें तो परमोत्तम (अतिउत्तम) हो । क्योंकि तबही उनको इस पुस्तक की विशेषताओं तथा इसके चमत्कारिक वर्णन का पूर्ण पता भी लग सकता है प्रत्युत इस अलौकिक साहित्य का भी यथेष्ट रसास्वादन हो सकता है ।

पाठकों से यह भी निवेदन कर देना अनुचित न होगा कि भक्त जन अपने इष्टदेव के नित्य तथा नैमित्यक धामों को सर्व प्रकार एक ही समझते हैं । अतः यह भी मानते हैं कि जिस प्रकार उनके इष्टदेव की दिनचर्या अवतार धारण कर नैमित्यक धाम में निवास करने के

समय रही हैं उसी प्रकार अब भी नित्य धाम में रहती है। इसी से वे अपने इष्टदेव की षोडसोपचार पूजा सेवा करते हुये उसी दिनचर्या-नुसार उसकी लीलाओं, तथा चरित्रों की यथा विधि भावना करते हैं। इसी २४ घंटे की भावना अथवा मानसिक पूजा सेवा का वर्णन इस अष्टयाम में वर्णित है। जैसा कि “अष्टयाम भावना” शब्द से प्रगट ही है।

वैसे तो कई आचार्यों ने ऐन केन प्रकारेण इस साहित्य को अपनी कृतियों में यत्र तत्र प्रगट किया ही है परन्तु सर्व प्रथम रसिक शिरोमणि श्री स्वामी अग्रदास जी ने ही इसे प्रथक संस्कृत साहित्य में पुस्तक बद्ध कर अष्टयाम नाम से प्रख्यात किया है। अतः आपकी ही कृपा द्वारा हिन्दी भाषा में इसे प्रसिद्ध कर सर्व प्रथम होने का श्रेय आपके ही कृपा पात्र भक्तमाल रचयता, प्रसिद्ध छप्पयकार श्री स्वामी नाभाजी को प्राप्त हुआ है। अनंतर कई महात्माओं ने अपने २ अनुभवानुसार अष्टयामों की रचना की परन्तु यह श्री नाभाजी कृत अष्टयाम अपनी अद्वीय प्रभा से ही चमत्कृत हुआ क्योंकि इसी की छाया किसी न किसी प्रकार समस्त भाषा अष्टयामों में झलकती हुई स्पष्ट प्रतीत होती है।

भाषा का यह आदि अष्टयाम होने के कारण श्री स्वामी नाभा जी ने इसे पंचरस मयी लिखा है। दूसरे आप रहे आचार्य, अतः आपको निश्पन्न भाव से सर्व सुविधावाला ग्रंथ निर्माण करना ही चाहिये और आपने वैसा किया भी है।

वैसे तो उपासना संबंधी सभी रसों की भावुकता प्रगट करते हुये श्री स्वामी जी ने अनुपम पटुता प्रदर्शित की है परन्तु रस श्रेष्ठ शृंगार रस का चमत्कार आपका परम हास्यद अकथनीय ही है जिसे रसिक हृदय ही समझ सकेंगे। क्यों न हो! आप तो इसी रसराज रस के ही रसिक थे। और इसी से आपकी समस्त रसों में पहुँच भी थी। इसके अतिरिक्त आप अपने भाव के परम भोक्ता भी थे। अतः

आपका यथार्थ अनुभूत वर्णन क्यों न हृदय प्राप्ति तथा माननीय हो ?

साथ ही साथ इस अष्टयाम मूल ग्रंथ में बहुत संमिश्रण होगया है क्योंकि महानुभावों ने इसमें अपने २ अनुभव की बहुत सी बातें मिला कर कुछ ग्रंथ बिस्तार कर दिया है, जिससे मूल ग्रंथ में कुछ अंतर सा पड़ जाता है; परन्तु ध्यान पूर्वक समझने से शोध ही पता चल जाता है। अतः इस बात पर पूर्ण ध्यान देते हुये एक प्राचीन हस्त लिखित प्रति द्वारा इस पुस्तक का संशोधन किया गया है।

जैसे तो श्री स्वामी जी ने इसे अति सरल, हिन्दी भाषा में छन्दे बद्ध किया ही है परन्तु सर्वा साधारण को अब भी इसके कार्य्य क्रम समझने में उलझन पड़ती है। यही कारण है कि हमारे आचार्य प्रवर श्री स्वामी राजकिशोरीवर शरण (श्री स्वामी परमानन्द जी) ने इसका सरल हिन्दी गद्यानुवाद कर इसके कार्य्य क्रम को यथार्थ रूप से हृदय गत कराने का यथाशक्ति पूर्ण प्रयत्न किया है। जिसका पाठक गण स्वयं अनुभव करेंगे।

अंत में मैं तथा मेरे आचार्य जी रसिक वर, आधुनिक भावना योगी श्री स्वामी सिया शरण जी (मधुकुरियाजी) महाराज के हृदय से कृतज्ञ हैं कि जिन्होंने इस कार्य्य में पूर्ण प्रोत्साहित करते हुये परियाप्त सहायता दी, प्रत्युत अति हृदयोत्साह के साथ इसे टीका सहित प्रकाशित करने की भी सहर्ष आज्ञा दी। जिसका फल स्वरूप पाठकों के कर कमलों में है।

विशेष क्या,

आशा है कि पाठक गण

“संत हंस गुण गहहि पय, परिहर बारि बिकारि”

वाले पद्य खंड के भावको अचरसः चरितार्थ करते हुये (त्रुटियों

पर मनन न करते हुये) मेरे तथा मेरे आचार्य जी का परिश्रम सफल
कर मर्म का ही रसास्वादन करेंगे । और आगामी संस्करणार्थ वृत्तियों
से सूचित करेंगे-जिसके लिये उन्हें कोटिशः धन्यवाद है । अस्तु ॥

रहस्य प्रमोदभवन
जानकीघाट
अयोध्या।

निवेदक,
पं० मदनगोपाल शुक्ल

(पं० नवलकिशोर शरण)

“मदन” छतरपूर।



॥ श्री जानकी बल्लभो विजयते ॥

ॐ श्री मते रामानन्दायनमः ॐ

श्री स्वामी नाभाजी कृत

अष्टयाम भाषा-टीका



॥ सोरठा ॥

राम कृपा को रूप, बन्दौ श्री गुरु हरि स्वयम् ।
जाको सुयस अनूप, दशधा सम्पति धनद जिमि ॥ १ ॥

अर्थ—श्री स्वामी नाभाजी कहते हैं कि सर्व प्रथम मैं श्री गुरु महाराज की बन्दना करता हूँ, जो श्री रामजी की कृपा के स्वरूप हैं, और स्वयम् हरिरूप हैं। अर्थात् साक्षात् हरि ही हैं, जिनका परम सुन्दर अनुपम (जिसकी उपमा नहीं अर्थात् लोकोत्तर) यश समस्त जगत में व्याप्त अर्थात् फैल रहा है, जो (श्री गुरुदेव) दशधा सम्पत्ति के यानी प्रेमा भक्ति रूपी सम्पत्ति (धन) के कुबेर हैं कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार धनिक श्रेष्ठ श्री कुबेरजी धनसे पूर्ण हैं (अद्वितीय धन धनिक हैं) उसी तरह आप (श्री गुरुदेव जी) प्रेमा भक्ति रूपी धनसे पूर्ण हैं (अद्वितीय प्रेमाभक्ति धनिक हैं) ॥ १ ॥

॥ दोहा ॥

सियवर के अहिक चरित, कहत सुकवि सकुचात ।
तहँ मम मति अति अगम लखि, छिन २ अधिक सकात ॥ २ ॥

अर्थ—श्री गुरुदेव जी की बन्दना करके आप कहते हैं कि जिन श्री सीतावल्लभ जी के एकान्तिक आठोयाम के चरित्रों के कहने में सुकवि

(श्री बाल्मीक श्री व्यासजी) सकुचाते हैं अर्थात् जिनके चरित्रों को संकोच के साथ वर्णन करते हैं उन्हीं श्री सीताराम जी के ऐकान्तिक अष्टयाम चरित्रों को मैं वर्णन करना चाहता हूँ। भला कहिये तो तहाँ पर मेरी मति पहुँचकर उन चरित्रोंको कैसे वर्णन कर सकती है। अतः वहाँ मेरी मति उन चरित्रों को कहना अगम (अगम्य अर्थात् सामर्थ्य के बाहर) देख कर (जानकर) बारंबार ही छिन छिन में अधिक २ भयभीत होती है अर्थात् शंका से युक्त होती है कि उन श्री सीताराम जी श्री युगल प्रिया प्रीतम, सिया बल्लभ जी का ऐकान्तिक चरित्र हमसे कैसे कहते बनेगा ॥ २ ॥

॥ दोहा ॥

सज्जन उर प्रेरित गिरा, रघुबर आज्ञा दीन ।
सोबल मन अवलम्ब लहि, बचन शीश धरि लीन ॥ ३ ॥

अर्थ—आप श्री स्वामीजी इस दोहे में, “क्यों ग्रंथ रचना की” इसका कारण कहते हैं—कि (ये श्री गुरुदेव स्वामी अग्र जी की अनुपम कृपा का फल है) सज्जनों के हृदय में श्री राघवजी ने ही प्रेरणा कर उन महानुभावों की बाणी द्वारा ही मुझे अष्टयाम वर्णन करने की आज्ञा दी (श्री अग्रस्वामी जी जिस समय रहे उस समय बड़े २ महात्मा स्थान में निवास करते थे इन्हीं सब महात्माओं ने श्रीस्वामी नाभाजी से कहा कि “आप श्री युगल प्रिया प्रीतम जी का अष्टयाम वर्णन कीजिये”) सोई श्रीसीताबल्लभ जी की आज्ञा जान इसी आज्ञावलम्ब पाकर मन से यही आज्ञारूप वचन को शिरोधार्य किया ॥ ३ ॥

॥ दोहा ॥

सहचर श्री गुरुदेव के, नाम नरायण दास ।
जगत प्रचुर सिय सहचरी, बिहरत सकल विलास ॥ ४ ॥

अर्थ—यहाँ ग्रंथकार जी अपना परिचय देते हुये कहते हैं कि हम श्री गुरुदेव श्री अग्रस्वामीजी के सहचर (दहलुवा) हैं और हमारा

स्थूल देह संबंधी नाम नारायणदास है (तो क्या आपका आत्मसंबंधी नाम और है) अतः बड़े गौरव के साथ आप कहते हैं कि हमारा जगत प्रचुर अर्थात् जगत प्रसिद्ध नाम सिय सहचरी है (इस नाम से क्या तात्पर्य इस स्वरूप से भी आप कुछ काज करते हैं सो कहते कि हाँ) अर्थात् हम श्री सीताजी की सहचरी (दासी) है । अतः श्री सीता-बल्लभजू के सकल विलासों और सर्व आनंद बिहार स्थानों में हम सदैव बिहरते हैं सभी जगह हमारी पहुँच है अर्थात् किसी भी आनंद विलास स्थल में हमारी रोक टोक नहीं है ॥ ४ ॥

॥ दोहा ॥

भवसागर दुस्तर महाँ, मोहि मगन लखि पाय ।
सदय हृदय जिनको सरस, तब इमि भई रजाय ॥५॥

अर्थ—यह संसार सागर जो महाँ दुस्तर है अर्थात् जिसके दुख से तरनो (पार जाना) महा कठिन है ऐसे भव-सागर में मुझको डूबते हुये देख कर श्री सीतारामजी ही की, संत महानुभावों की बाणी द्वारा, जिन (सज्जनों) के सदय (दयायुक्त) सरस (रसयुक्त) हृदय हैं, यह आज्ञा हुई कि तुम अष्टयाम के ऐकान्तिक चरित्र वर्णन करो ॥ ५ ॥

चौ०—सो उर धरि बन्दों सब काहू ।

दीन जान मोहि करिय निबाहू ॥६॥

अर्थ—सोई अति प्रियबानी, परम हित रूप आज्ञाको हृदय में धोरणकर और समस्त दयालु सरस हृदयवाले संत महानुभावों की बंदना करके श्री स्वामी नाभाजी कहते हैं कि इस अष्टयाम ग्रंथ के पूर्ण निर्वाहार्थ मैं आप सब से कृपा रूपी आशीर्वाद चाहता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि मुझे अति दीन समझ कर आप महानुभाव ऐसी कृपा करें कि जिसके द्वारा श्री सीतारामजी की आज्ञा जो सज्जनों द्वारा मुझे हुई है उसका निर्वाह पूर्णतया होजाय ॥ ६ ॥

चौ०—अवधपुरी की सोभा जैसी ।

कहि नहिं सकहिं शेष श्रुति तैसी ॥७॥

अर्थ—इस प्रकार बंदना मंगलाचरण करके श्री स्वामीजी ग्रंथ का प्रारंभ कर श्री अयोध्याजी की शोभा का वर्णन करते हुये कहते कि श्री अवधपुरी की जैसी शोभा है उस प्रकार (वैसी) शेषजी जिनके हजार मुख दो हजार जिह्वायें हैं और वेद जो सब कुछ वर्णन करने में प्रधान हैं नहीं कहसकते (शेषजी और वेद भी वर्णन करते हैं पर जसी शोभा है तैसी नहीं कह पाये हैं) ॥ ७ ॥

चौ०—तहँ रजनी विशेष सुखदाई ।

शशि उडगण प्रतिबिंबित भाई ॥८॥

अर्थ—वैसे तो श्री अवधजीकी सदैव (सबदिन) शोभा शोभायमान ही है परन्तु चन्द्रमा रात्रि में विशेष शोभा को प्राप्त हो विशेष सुखदाई शोभा हो जाती है क्योंकि श्री अवधजी सब मणिमयी हैं चन्द्रमा रात्रि में आकाश चन्द्रमा, तारागनों का प्रतिबिंब उन मणियों में पड़ कर प्रतीत होता है कि स्थानों २ में अनेकों चन्द्रमा, आकाश उडगण विद्यमान हैं और उन मणियों का और चन्द्रमा की चाँदनी का प्रकाश मिलकर चारों तरफ चमर चमर चमचमाहक शोभा आनन्द की अवधि हो रही है ॥ ८ ॥

चौ०—तीन दंड जामिनि रह जबहीं ।

राज दुंदभी बाजत तबहीं ॥९॥

सो सुनि वेद बंदि जन रूपा ।

गाय उठत प्रभु सुजस अनूपा ॥१०॥

अर्थ—जब तीन दंड रात्रि शेष रहजाती है तब राजदुंदभी राजद्वार पर बजने लगती है (राजद्वार पर जो बड़ा नगोड़ा नगाड़खाने

में रहता है उसे राज दुँदभी कहते हैं इस ब्रह्म नगाड़े को, नगाड़ची यानी नगाड़ा बजानेवाले तीन घड़ी रात्रि शेष देखकर ब्रह्म मुहूर्ति की सूचना देते हुये सबको सावधान करने के लिये, बजाने लगजाते हैं॥९॥

सो उस नगाड़े की ध्वनि सुनि कर वेदरूपी बंदीजन श्री जानकी बल्लभजी प्रभु का सुन्दर अनूप यश गाने लगते हैं (जब श्री भक्तवत्सल अहेतु की करुणावस होकर भक्तजनों के हितार्थ समस्त परिकन सहित भूमंडल में प्रगट होते हैं तब वेद भी बंदीजन होकर श्री प्राणबल्लभ प्रभुन की सेवा उनके अनुपम यश गान द्वारा करते हैं यह द्वार पर बंदी-जनों के भेषमें द्वारपाल रूप से रहते हुये दुँदभी ध्वनि के साथ वेद ध्वनि करने लगते हैं ॥ १० ॥

चौ०—तिनको ध्वनि सुनि गुणि गण जागे ।

मधुर स्वरन ते गावन लागे ॥ ११ ॥

सो ध्वनि पुनि अंतःपुर आई ।

एक सखी उठि सकल जगाई ॥१२॥

अर्थ—तिन बंदीजनों की वेद ध्वनि सुनकर श्री युगल लाडली-लालजी के यश गुण गानेवाले गुणीजन जागकर ब्रह्ममुहूर्ति की राग रागिनियों को मीठे स्वरों से मधुर २ गाने लगते हैं (मधुर मनोहर स्वरों से गुणीजन श्री युगल प्रभुन के गुण-यशों को राग-रागिनियों में गाने लगते हैं) ॥ ११॥

वही गुणीजनों की गाने की ध्वनि (शब्द) अंतःपुर में पहुँचती है वहाँ यह ध्वनि के सुनते ही एक सखी (सुरत रूपी सखी) जग कर सबको ही एकसाथ जगा देती है अर्थात् सब परिकरों (सहचरी वर्गों) की श्री युगल सरकार की सेवा में सुरति रखी है वही गुणीजनों की ध्वनि सुनि कर (जगकर) सबको सावधान करदेती है तात्पर्य यह है कि सब सखीगण एकसाथ अपना परिचर्या सूचक गुणीजनों की ध्वनि सुन कर जाग उठती हैं ॥ १२ ॥

चौ०—ते निज २ ठौरहि रँग भीनी ।

रघुबर जस गावत सुर भीनी ॥१३॥

अर्थ—वे सब अनंत परिकर जन अपनी २ कुंजों में श्री युगल सरकार जी के परम प्रेमानंद में रँगी हुयी अर्थात् भीगकर श्री प्रियाप्रीतमजू के परमप्रिय यरागानको भीने २ स्वरों से गाने लगती हैं क्योंकि अभी श्री युगल सरकारन की सेन हो रही है ॥ १३ ॥

चौ०—पुनि तहँ ते खोड़स सहचरी ।

गाय उठीं प्रीतम रँग भरीं ॥१४॥

अर्थ—फिर यहाँ से आगेवाली खोड़स सहचरी (युथेस्वरी) श्री युगल प्रिया प्रीतमजी के रँग में भरीं हुई (श्री सीतारामजी के परस्पर आनंद के पद अथवा) श्री युगल रस से भरे पदादिकों को गाने लगती हैं ॥ १४ ॥

चौ०—तिनते पुनि बसु सर्खीं सुहाई ।

निज २ थल गावत छवि छाई ॥१५॥

अर्थ—इन उपरोक्त खोड़स यूथेस्वरीन के आगे अष्ट यूथेश्वरीं सोभित हो रही हैं ये भी अपनी २ कुंजों में श्री युगल प्राणप्यारेन की छवि में छकी हुई श्री प्रिया प्रीतमजी के परस्पर छवि छके शृंगार रस संबंधी पदों को गाने लगती हैं और गाते २ श्री युगल छवि ध्यान में छक रहती हैं ॥ १५ ॥

चौ०—अंतःपुर जहँ सियवर राजें ।

सोभा कहत शेष शुक लाजें ॥१६॥

अर्थ—इस उपरोक्त अष्ट यूथेश्वरीन के आगे अंतःपुर है यहाँ पर ही श्री मिथिलेश किशोरीजी और श्री कौशलेश किशोरजी, श्री सियाजी

के वर श्री सियाजी के साथ राजते हैं अर्थात् सुशोभित हैं यहांकी इनकी इस शोभा के वर्णन करने में शेष, शुकदेव परमहंस दि लजाते हैं (यहां शेष, शुकादिकों की तो गम्य ही नहीं तो फिर वे इस शोभा को क्या कहें पर यहांकी परम आनंद मयी शोभा सुख का हाल यहां की (अन्तःपुर की) निवास करनेवाली सहचरीवर्ग ही जानती हैं ॥ १६ ॥

चौ०—रतन जरित परयंक सुहावा ।

चारि मुक्त पाया श्रुति गावा ॥ १७ ॥

अर्थ—इस अंतःपुर के मध्य में रतन जड़ित पलंग शोभायमान हो रहा है तिस पलंग के चारों पाये ही चारों मुक्ति हैं ऐसा वेद (श्रुति) कहते हैं अर्थात् ऐसा वेदों में लिखा है (चारों मुक्ति ये हैं (१) सालोक्य (२) सारूप्य (३) सायुज्य (४) सामीप्य) ॥ १७ ॥

चौ०—तेहि ऊपर अति ललित बिछौना ।

छीर फेन सम कोमल लोना ॥ १८ ॥

अर्थ—तिस पलंग पर अतियंत सुन्दर, दूध फेन के समान उज्ज्वल परम कोमल, परम प्रमोद सुखरूप (श्री युगलसरकारेन के सेन सुख का अनुभव करनेवाले) बिछौना बिछे हुये हैं जिनकी सुन्दरता देखते ही बनती है ॥ १८ ॥

चौ०—तेहि ऊपर सुमननि की शोभा ।

कहत न बने देख मन लोभा ॥ १९ ॥

अर्थ—तिस बिछौने के ऊपर अनेकों रंगके परम सुगंधयुक्त परम कोमल फूलों की रचना, सहचरीवर्गों की कीहुई, शोभायमान होरही है जो कहते नहीं बनती देखते ही बनती है और जिसे देखते ही मन परम लोभ को प्राप्त हो छिनभर को भी उस शोभा को छोड़ बिलग नहीं होना चाहता है अर्थात् देखते रहनाही चाहता है ॥ १९ ॥

॥ दोहा ॥

चित्र विचित्र सखिन रचि, सेज सुमन पचरंग ।
लाल लाड़िली रस भरे, सोवत दोउ हित संग ॥ २० ॥

अर्थ—चित्र विचित्र अनेकों रंग युक्त फूलों से अति विचित्र परि-
कर जनों ने बिछौने के उपः पंचरंग सुमनों की सुन्दर सेज रचि रक्खी
है जिसपर श्री लाड़िलीलालजी परस्पर रसमें भरे हुये परम आनंद प्रेम
के साथ सयन करते हैं ॥ २० ॥

चौ०—परयंकौ परि छतरी राजै ।

अरुण दंड मणि जरित विराजै ॥ २१ ॥

अर्थ—उस पलंग के ऊपर लाल मणियों से जड़ित चार सीधे
दंडों वाली छतरी (चांदनी) शोभायमान हो रही है अर्थात् पलंग के
ऊपर सुन्दर छतरी शोभायमान होरही है जिसमें सुन्दर चारोंदंड लाल
मणियों से जड़ित विराज रहे हैं ॥ २१ ॥

चौ०—गज मुक्तन कीं भालर भमकै ।

मणि में दीप जोति मधि चमकै ॥ २२ ॥

अर्थ—पलंग के चारों ओर पायों के निकट और ऊपर छतरी के
चारों ओर किनारों में गज मुक्तन की भालरें झूल रही हैं इन भालरों
के चारोंओर जो खंभों में मणिमय दीप विद्यमान हैं तिनकी ज्योति गज
मुक्तन के बीच चमक रही है ऐसा प्रतीत होता है कि इन जगमुक्तन के
अन्दर सम्पूर्ण भालर में मणियों के दीप प्रकाशित हो रहे हैं अथवा
श्री सीतारामजी के मणि मय सयनकुंज की मणियों का प्रकाश गज
मुक्तन में हो रहा है इस प्रकार अमित शोभा पलंग भालरों की होरही
है ॥ २२ ॥

चौ०—भीने पट अति परदा परे ।

पवन प्रसंग व्यजन शिर ढरे ॥२३॥

अर्थ—इस छतरी (चांदनी) के चारों ओर अति भीने (बारीक पतले) परदे पड़ रहे हैं और इसी छतरी में भीतर शिरहाने की ओर ऊपर परम मधुर मनोहर पंखा लग रहा है जो कि किंचित् पवन प्रसंग पाकर मधुर २ गति से दुरने लगता है अर्थात् अपने आप वायु द्वारा दुरने लगता है ॥ २३ ॥

चौ०—तेहि चारिहु दिशि फरस बिछौ अति ।

कनक तार जरि बफत विराजति ॥२४॥

अर्थ—उस पलंग के चारों ओर फरस गद्दा बिछा है जिसमें सोने के तारों के अनेकों प्रकार के काम निकाले गये हैं यह फरस अति कोमल है जिसमें चरण रखते ही चरण धँस जाते हैं (गप जाते) इसके स्पर्श से ही इस फर्स की कोमलता सूचित होती है जो अति सराहनीय है ॥२४॥

चौ०—कहु अति कोमल बिछे गलीचा ।

सुमनन की रचना बिचबीचा ॥२५॥

अर्थ—उस गद्दे फर्स पर कहीं कोई कहीं कोई चारों ओर रंगरंके परम मुलायम गलीचा जो ऊपर नीचे बहुत कोमल हैं बिछे हुये हैं जिनमें बीच २ में परम सुगंध युक्त अति कोमल पुष्पों की रचना की गई है ॥२५॥

चौ०—कहुं कंचन की चौकी धरी ।

भारी श्री सरयू जल भरी ॥२६॥

अर्थ—पलंग के चारों ओर स्वर्ण की चौकियां रक्खी हुई हैं जिन पर श्री सरयू जल से भरी मणि जटित कंचन की भारियां रक्खी हुई हैं

अर्थात् ऋतु अनुकूल सुगंध युक्त सरयूजल से भरी हुई सुन्दर भारी परम सुशोभित हो रही है ॥ २६ ॥

चौ०—स्तन जरित बहु धरे कटोरा ।

बहु मेवन युत स्वाद न थोरा ॥ २७ ॥

अर्थ—तिन चौकियों में अनेकन स्वादिष्ट मेवाओं से भरे स्तन जरित कटोरा रक्खे हुये हैं जो मेवा अनेकों प्रकार के स्वादयुक्त हैं जिनमें थोड़ा नहीं अति स्वाद है ॥ २७ ॥

चौ०—पान दान बीरिन तें भरे ।

अगनित भांति सुरभि कहूं धरे ॥ २८ ॥

अर्थ—उन्हीं चौकियों पर कहीं पान बीरियों से भरे पानदान और अनेकों भांति के सुगंध युक्त अनेकों अतरदान अतरों से भरे हुये सोभित हो रहे हैं ॥ २८ ॥

चौ०—पुनि तेहि पीछे परदा डारे ।

तहँ निरत उठि सखी सबारे ॥ २९ ॥

अर्थ—फर्स (जो पूर्व कह आये हैं) के चारों ओर विशाल खंभे हैं तिनमें चारों ओर पर्दे पड़ रहे हैं इन पर्दों के बाहर प्रातःकाल उत्थापन के वास्ते (श्री युगल सरकारेन के जागरन हेतु) सब सखीगन नृत्य गान करतीं हैं अर्थात् सबेरे उठ कर इन्हीं परदों के बाहर यहीं सब सखी गन मधुर २ स्वर से जागरन के लिये गाती नृत्यतीं हैं ॥ २९ ॥

चौ०—प्रथम आवरण बसु मंजरी ।

पुनि तहँ ते खोड़स सहचरी ॥ ३० ॥

अर्थ—सयनकुंज के बाहर पहलेही आवरण में अष्ट यूथेश्वरींन के महल हैं यहां ये अष्ट मंजरी हो अपनी २ सौज सेवा को लिये विद्यमान रहती हैं फिर इसके बाद दूसरे आवरण में खोड़स सहचरीं (यूथेश्वरीं) अपनी २ सेवा सौज सहित विद्यमान हैं ॥ ३० ॥

चौ०—तेहि पीछे ललना बहु राजैं ।

निज २ सौज लिये सब भ्राजैं ॥३१॥

अर्थ—इस आवरण के बाद तीसरे आवरण में अनंत ललनायें सहचरीं अपनी २ सेवा सौज लिये तैयार हो परम सुशोभित हो रही हैं ॥३१॥
कैसी सुहाय रहीं हैं सो कहते हैं—

चौ०—कोउ तांबूल लिये कोउ भारी ।

कोउ सुमननि सिंगार सँवारी ॥३२॥

रंग २ के गजरा लीन्हें ।

प्रीतम मग चितवत चित दीन्हें ॥३३॥

अर्थ—कोई सखियाँ जिनकी पानकी सेवा है सो पानकी बीरियाँ लिये; जिनकी जल की सेवा है सो सुन्दर स्वर्ण की भारियों में परम सुगंधित श्री सरयूजल लिये, जिनकी फूलों के सिंगार की सेवा है सो अति उत्तम अति सुगंधित फूलों के सर्व अंगों के सिंगारों को अति सावधानी से लिये, जिनकी हारों की सेवा है सो रंग २ के परम सुगंधित गजराओं को लिये, खड़ी हुई श्री प्राणवल्लभजी की रास्ता (बाट, मग) चित देकर चिते रही हैं कि कब श्री प्रियाप्रीतमजी उठें और कब हम अपनी सेवा समर्पित करने के लिये सेवा में तत्पर हो समीप प्राप्त हों ॥ ३२-३३ ॥

चौ८-अंतःपुर की धुनि सुनि पाई ।

निज २ थल तिन सौंज बनाई ॥३४॥

अर्थ—ज्योंही सखीगन अंतःपुर के बाहरी आवरण में वहां परदों के समीप (ऊपर कह आये हैं) श्री प्राणप्यारेन के जागरण हेतु मधुर स्थलों से नृत्य गान करने लगती हैं और ज्योंही इस नृत्य गान की ध्वनि अंतःपुर के बाहर सखीगनों के पास पहुँचती है त्योंही शब्द सुनते ही समस्त परिकरगन अपनी २ कुंजों में सेवापयोगी समस्त वस्तुयें अथवा अपनी सेवा सौज को सम्हारने लगती हैं (तैयार करने लगती हैं) क्योंकि श्री युगल सरकार सबकी सेवा सफल करने केलिये नित्य ही सबकी कुंजों में जाते हैं ॥ ३४ ॥

चौ०-कोउ एक प्रात समय परभाती ।

लिये सुगंध अनेकन भांती ॥३५॥

अर्थ—उनमें कोई सखियां, उत्थापन आरती की मंगलीक सौंज लिये, कोई अनेकों प्रकार के सुगंधित (मृगमदादि) मुख मंजन चूर्ण लिये, कोई सुन्दर सुगंध में तली हुई प्रभाती लिये और कोई प्रभात समयानुकूल अनेकों भांति के इत्र वगैरह लिये सेवा को तैयार हैं । ॥३५॥

चौ०-अंतःपुर की सयन निहारें ।

अपनी २ सौंज सुधारें ॥३६॥

अर्थ—और अपनी २ सेवा सौंज सामग्री अच्छी तरह लिये हुये अपनी २ कुंज में अंतः पुर की सयन कुंज की ओर उत्सुकता पूर्वक सब (सखीगन) ताक रही हैं कि कब श्री युगल प्राणवल्लभजी की अवाई (उत्थापन) होय और कब हम अपनी २ सेवा में तत्पर होवें ॥३६॥

चौ०—तेहि पीछे सुन्दर चिक डारी ।

अजिर भूमि मणि जरित सवारी ॥३७॥

अर्थ—इन अनंत सखियों के बाद फिर बड़ी २ चिकें पड़ी हुई हैं तिसके बाद सयन कुंज की अंगनाई है जिसकी चौकार फरस की भूमि नाना प्रकार की मणियों से जड़ी हुई है ॥३७॥

चौ०—चारु चहुं दिशि चारि दुवारें ।

नाग रदन मनि जरित सम्हारे ॥३८॥

अर्थ—इस अंगनाई के चारों दिशाओं में चारों ओर सुन्दर चार दरवाजे हैं जिनकी चौखटें हाथी दातों की मणि जड़ित बनी हुई परम सुशोभित हो रही हैं अर्थात् ये हाथी दातों की चौखटें मणियों के जड़ाव से सँवारी (बनाई गई) हैं ॥३८॥

चौ०—प्राची दिशि जोद्वार विराजें ।

श्री सुभगा सहजा ग्रह राजें ॥३९॥

अर्थ—पूर्व दिशा के दरवाजों में अंगनाई से लगे हुये पूर्व दरवाजे के आस पास दोनों ओर यूथेश्वरी श्री सुभगाजी तथा श्री सहजाजी के भवन (कुंजें) शोभायमान हो रहे हैं । यहां से चारों ओर सप्तावरण हैं (सात आवरण हैं) जिसके चारों दिशाओं में ७-७ दरवाजे हाथी दातों के मणि जड़ित रचे गये हैं इस सप्तावरण में उप दिशाओं में अनंत परिकर जनों की अनंत कुंजें हैं ॥३९॥

❀ बाहर की कुंजन परिकरन की बात कह के फिर पूर्व परिकरन में पूर्व के प्रसंग में (उत्थापन में) आगे के प्रसंग को मिलाते हैं ।

चौ०--उत्तर दिशि अस्नान कुंज जहं ।

प्रीतम प्रिया करत मज्जन तहं ॥४०॥

अर्थ—उत्तर दिशा के भीतरी दरवाजे के आवरण के आस पास स्नान कुंज शोभित हो रहा है यहां श्री प्रिया प्रीतमजी स्नान करते हैं ॥४०॥

चौ०--पच्छिम दिशि भोजन की शाला ।

भोग मंडई ललित विशाला ॥४१॥

अर्थ—पउरोक्तानुसार पच्छिमी दरवाजे के पास भोजन कुंज शोभा देता है जहां श्री युगल सरकार जी भोजन करते हैं यह भोजन कुंज (भोग मंडी) परम ललित अति ऊंचा विस्तीर्ण है ॥४१॥

चौ०--दक्षिण दिशि पुनि रतन सिंहासन ।

कक्ष सात ते परे सुभासन ॥४२॥

अर्थ—उसी क्रमानुसार दक्षिण दिशा में सातों आवरण के बाद येसुन्दर सुभासन रतन सिंहासन (रत्नों का सिंहासन) शोभित हो रहा है ॥४२॥

चौ०--प्रथक विधा बहु चौक विराजें ।

अगनित भांति सिंहासन राजें ॥४३॥

अर्थ—सातों आवरण के प्रथक बहुत से चौक शोभायमान हो रहे हैं जिनके मध्य अनेकों प्रकार के सुन्दर सिंहासन शोभित हो रहे हैं ॥४३॥

चौ०--प्रथम चौक बंदीजन गावें ।

क्रमतें गुनिजन धुनि उपजावें ॥४४॥

अर्थ—अब श्री स्वामीजी बाहर के आवरण से सोतों आवरणों का वर्णन करते हैं—कि प्रथम आवरण में बंदीजन (वेदादिक जो बंदी रूप से गुणगान को प्रकट होकर आये हैं सोई) श्री युगल प्रभुन के यश, गुण गान करते हैं पुनः दूसरे आवरण में गुनी नाना प्रकार की राग-रागनियों में श्री प्रिया-प्रीतमजी के गुण यश वर्णन करते हैं। (इनकी समयानुकूल गाने ही की सेवा है ॥ ४४ ॥

चौ०—पांच चौक यहि विधि धुनि छाजै ।

छटइ मध्य सखी सुख साजै ॥४५॥

अर्थ—पांच चौकों तक इसी प्रकार (उपरोक्त की तरह) श्रीप्राण प्यारेन की जागरन कराने के लिये सुन्दर मधुर २ ध्वनि में गान तान हुआ करता है अतः पांचो चौकों में इस गान तान की मनोहर धुनि छाई रहती है इसके बाद छटयें आवरण में अपनी २ सेवा सौज लिये हुये सुख पूर्वक अनंत सखियां, अति उत्कंठासे श्री प्राणप्यारेन की राह देखती हुई कि कब हमको सेवा सुख प्राप्त हो, शोभित होरहीं हैं ॥ ४५ ॥

चौ०—पुनि तहँ ते अंतःपुर सोहा ।

ज्यहि निरखि बिरंचि मन मोहा ॥४६॥

अर्थ—इस आवरण के आगे फिर अंतःपुर परम रमणीय, अति चित्ताकर्षक परम शोभा को प्राप्त होरहा है जिस शोभा को अवलोकन कर जगत रचयता, सृष्टि कर्ता, साक्षात् ब्रह्माजी का मनमोहित हो बेबस हो जाता है। अतः वह अलौकिक शोभा परम विचित्र अति अद्भुत और अकथनीय है ॥ ४६ ॥

चौ०—कनक भवन यह विधि कहु कहऊ ।

जथा प्रथम गुरुजन मुख लहऊ ॥४७॥

अर्थ—श्री नाभा स्वामीजी कहते हैं कि श्री कनकभवन की बनावट तथा शोभा के वर्णन करने की किसकी सामर्थ्य है तिसपर भी जितना श्री गुरुदेवजी (श्रीअग्रस्वामीजी तथा बड़े जनों के) श्री मुखों से श्रवण किया है उतना भी न कह सका अर्थात् उतने तक कहने की भी सामर्थ्य नहीं पर जो कुछ कह सका वह मंदोप ही थोड़ा वर्णन किया इस प्रकार कनक भवन का परिचय देकर (धाम वर्णन कर) श्री स्वामीजी अब आगे सेवा क्रम वर्णन करते हैं ॥ ४७ ॥

चौ०—आठ सखी जो मुख्य बरवानी ।

तिनमें इक अति चतुर सयानी ॥ ४८ ॥

राम कृपा मूरति धरि रूपा ।

सुभग सिंगार बनाय अनूपा ॥ ४९ ॥

अर्थ—यह आठ सखियां (श्री चारुशीलाजी १ श्री हेमाजी २ श्री दोमाजी ३ श्री बरारोहाजी ४ श्री पद्मगंधाजी ५ श्री सुलोचनाजी ६ श्री सुभगाजी ७ श्री लक्ष्मणाजी ८ इन आठों में भी श्री चारुशीलाजी अधिपति है अर्थात् सर्वेश्वरीजी कहलाती हैं) जो मुख्य कही गई हैं जिनका कि वर्णन (१५ वीं १६ चौपाई में) हो चुका है (जिन आठ सखियों के नीचे अनंत यूथेश्वरी हैं जैसे खोड़स यूथेश्वरी इत्यादि इन अष्ट यूथेश्वरीन में एक मुख्य सर्वेश्वरीजी अति चतुर परम सयानी श्री श्री चारुशीलाजी हैं ॥ ४८ ॥

श्री स्वामीजी कहते हैं कि यह सर्वेश्वरीजी ऐसी ज्ञात होती है कि श्री सीतारामजी की साक्षात् कृपा ने ही यह श्री सखी रूप धारण किया है ये सर्वेश्वरीजी ने (श्री सीतारामजी की अतिशय कृपा पात्र) अच्छे २ भूषण बसन द्वारा अति सुन्दर अनुपम (लोकोत्तर) शृंगार बना ॥ ४९ ॥

चौ०—इक परदा भीतर सो गई ।

मंद २ ध्वनि निरत भई ॥५०॥

श्री सेनकुंज के भीतर बृहद परदा के समीप भीतर गई और मंदर ध्वनि से धीरे २ अति मनोहर स्वर में नृत्य करने लगीं (बाहर परदा के समीप ही समयूथेश्वरी अपनी २ सेवा सौज लिये प्रस्तुत हैं इनके बाद खोड़स, बत्तीस, चौसठ और अनंत परिकर गन खड़ी हैं) ॥ ५० ॥

चौ०—प्रथम मात मिसु बेन सुनाये ।

पुनि मिथिलापुर भांति जगाये ॥५१॥

अर्थ—सर्व प्रथम श्री सीतारामजी की जागरन के लिये श्रीसर्वेश्वरीजी श्री कौशल्या अंवाजी के वात्सल्य भाव के मिस (बहाने) सुन्दर २ वचन, कि श्री अंवाजी आपका स्मरण कर आपके मुख कमल देखने को बहुत आकुल हो रहीं हैं इसी प्रकार अनेकों तरह के उत्सुकता पूर्ण वात्सल्य प्रेम रस सनी बातें सुनाने लगीं पर उन बातों का कुछ भी प्रभाव न देख फिर मिथिलापुर बासिन के मिसु अनेकों हास्य रस पूर्ण विनोद वचनों द्वारा जगाती हैं तिसका कुछ उत्तर न देख फिर ॥ ५१ ॥

चौ०—अनुज सखा युत विनय सुनाई ।

निज परिकर की बात जनाई ॥५२॥

पुनि रसकन की बाँनी कही ।

दासन की विनती चित चही ॥५३॥

अर्थ—श्री चारुशीलाजी ने श्री भ्राताभरतादिकन तथा सखागन के सहित विनती की कि हे सरकार आपके दर्शनाभिलाषी आपके भ्रातागन सखागण आपके मुखकमल के दर्शन करने के लिये द्वार पर खड़े आपके

जागरन की राह जोह रहे हैं इसे भी निष्फल देख, इसकेवाद आप निज परिकरन की बात सुनाने लगी कि हे श्री प्राण बल्लभजी आपके समस्त परिकरगन निज दर्शनाभिलाषी अपनी सेवा सौज लिये आपकी सेवा में प्रस्तुत जागरन की बाट देख रही हैं इससे भी निरोत्तर हो ॥ ५२ ॥

श्री चारुशीलाजी फिर श्री रसिकजनों के बहाने से जागरन कराने को कहनेलगी कि हे सरकारजी आपके आवेसी परम प्यारे रसिक गन आपके दर्शन के लिये अति उत्सुकता से आपके जागरन की राह देख रहे हैं यहभी उपरोक्तानुसार प्रभावहीन जान सेवकों, दासों, के बहाने से यथाशक्ति नम्रभाव पूर्ण विनती की पर यहभी अनसुनी हुई अर्थात् उपरोक्त सबकी बातों की कुछभी सुनाई न हुई देख फिर ॥ ५३ ॥

चौ०—आरत जन की खबर जनाई ।

सो मिसु कछु धुनि श्रवननु आई ॥ ५४ ॥

श्री चारुशीलाजी ने आरत जनों की खबर जनाई कि हे श्री जानकी बल्लभजू आपके दर्शन बिना आपके आरतजन अति आकुल हो रहे हैं आरतजनों की विनय कानों तक पहुँचते ही शरणागत प्रतिपाल श्री युगल प्रिया-प्रीतमजी के जागरन के चिन्ह (इशारे) श्री चारुशीला जी के श्रवणगोचर हुये (पर्दे के भीतर) (प्रथम एक पर्दा उठाके भीतर गई थी दूसरा पर्दा फिर उठाया अब सिर्फ तीसरा पर्दा बाकी है) ॥ ५४ ॥

चौ०—मुख मुचंग नूपुर धुनि कीनी ।

निज अंग शकल वाक्य रस भीनी ॥ ५५ ॥

अर्थ—तब श्री सर्वेश्वरीजी मुचंगा बाजे को बजाते हुये नृत्य करती हुई अपने नूपुरोंकी ध्वनि करने लगी और सर्वांगों के हाव भाव युक्त अनेकों आनंद केलि बिलास रसमयी वाक्य कहती हुई परम आनंद रसमें भीग गई (आपा भूलना) ॥ ५५ ॥

चौ०—यहि बिधि लखि जागे रघुराई ।

पुनि परदा इक दीन उठाई ॥५६॥

अर्थ—इस प्रकार से श्री चारुशीलाजी ने देखकर कि श्री रघुवंश शिरोमणि श्री रामचन्द्रजी जाग उठे हैं तब आपने बाकी तीसरी परदा भी पेच द्वारा उठादी ॥ ५६ ॥

चौ०—जागे प्रीतम निशि रँग भीने ।

अरस परस शृंगार सब कीने ॥५७॥

अर्थ—रात्रि के बिहार रस में भीगे हुये श्री प्रीतमजी जागे और परस्पर शृंगार सुधारने लगे (अभी श्री युगल सरकार पलंग के चारों ओर वाली भीनी परदा के अन्दर हैं बाहर से खूब भली भाँति दर्शन हो रहा है पर आड़ रूप मशहरी है ही अभी श्री प्रीतमप्यारीजी रात्रि के परम आनंद बिनोद रस रंग से भीगे ही हैं पूर्णतया सावधानी नहीं हुई है) (परस्पर अरस परस बहुत संवेतिक बातें हैं अतः गुप्त ही चाहिये) परस्पर शृंगार सुधारने लगे सो कैसा शृंगार सुधारा कि ॥ ५७ ॥

चौ०—सिय के भूषण लाल संवारे ।

लालन के भूषण सिय धारे ॥५८॥

अर्थ—श्री युगल प्रिया प्रीतमजी परस्पर रस रंग में ऐसे तल्लीन हो रहे हैं कि एक दूसरे के भूषण तक नहीं पहिचान सके हैं क्योंकि श्री प्रियाजी के वस्त्र भूषण श्री प्रीतमजी और श्री प्रीतमजी के श्री प्रिया जी धारण कर यह उलट पलट शृंगार की शोभा श्री चारुशीलाजी भीने परदे के द्वारा ही अवलोकन कर रही हैं अनंतर कुछ सावधान होकर श्री युगल सरकारजी ने अपने २ परस्पर शृंगार भूषण वस्त्र सुधार कर (सँवार के) धारन करलिये ॥ ५८ ॥

चौ०—धर शिर चीरा अरुण सुहावा ।

प्रिय सहचरी को बदन दिखावा ॥५६॥

अर्थ—पलंग के समीप ही चौकी पर बँधा बँधाया चीरा (साफ़ा) सुन्दर लाल रंग का रक्खा है उसको स्वयं अपने हस्तकमलों से अपने शिर परचारण कर श्री प्रीतमजी ने अपनी प्रिय सहचरी श्री चारुशीलाजी को (भीने परदे मशहरी को अलग कर) अपने दर्शन दिये श्री सर्वेश्वरी जी दर्शन कर फिर ॥ ५९ ॥

चौ०—नैन सेन तिन्ह सखिन बुलाई ।

निज निज साज लिये चलिआई ॥६०॥

अर्थ—दर्शन करने के पश्चात् श्री चारुशीलाजी ने अपने नेत्रों की सेनों (इशारों) द्वारा सखियों को जो सेवा सौज लिये इस पर्दे के बाहर तक आगई थीं बुलाया अतः वह समस्त परिकरगन अपनी २ सेवा सामग्री सहित आगई और ॥ ६० ॥

चौ०—मंगल थार अग्र धरि दीन्हा ।

मन बांछित लोचन फल लीन्हा ॥६१॥

अर्थ—अब यहां से सखियां अपनी २ सेवा में प्रस्तुत होती हुई सेवा करती हैं । सर्व प्रथम उत्थापन मंगलादर्श थार (जो अनेकों मांगलिक वस्तुओं से भरा हुआ है) वा मंगलादर्श थोर जो सुन्दर गो घृत से भरा जिसमें प्रथम २ श्री युगलसरकार श्री युग्म मुख कमल अवलोकन करते हैं श्री युगल प्रिया प्रीतमजी के सन्मुख सखियों ने रख दिया और अपने मनमाना नेत्रों का फल श्री युगल प्राणप्यारेन का दर्शन प्राप्त कर रही हैं ॥ ६१ ॥ (उत्थापन)

चौ०—मलया गिरि चौकी चंदन की ।

सेज निकट धरि जग बंदन की ॥६२॥

अर्थ—उपरोक्त छंद द्वारा ही श्री नाभा स्वामी जी उत्थापन आरती का पलंग पर ही होना संकेत द्वारा ही बतलाते हैं प्रथम मंगलादर्श थार के रखते ही मंगल मय उत्थापन हो गया ऐसा समझ लेना चाहिये क्योंकि श्रीस्वामी जी महाराज संक्षेप से ही अपने अष्टयाम को वर्णन कर रहे हैं (पूर्व कथनानुसार) अतः गोप्य प्रगट रूप से सेवा के क्रम जानने समझने वाले और सेवा करने वाले अपने क्रम के साथ ही भावना करेंगे ।

श्री अष्टयाम सेवा भावना जानने, समझने व करने वाले यह समझ कर कि परम गुह्य रहस्य रूपी वस्तु को संकेत द्वारा ही कहा जाता है कोई शंका न करेंगे—क्योंकि ऐसा एकान्तिक गोप्य चरित्र सर्व प्रकार से बिलकुल सीधे कैसे वर्णन कर दिया जाय—अतः उत्थापन मंगलादर्श का संकेत कर ही दिया (६१वीं चौपाई का संकेतिक भाव) जगत बन्दन, तथा श्री ब्रह्मादिक बन्दन श्री युगल प्रभुन के पलंग के निकट ही पर्यंक से सटी हुई । मलयागिरि चन्दन की नाना मणि जड़ित एक चौकी रक्खी गई है ॥६२॥

चौ०—लाल लाड़िली तिन पर राजैं ।

तब तिन मंगल आरति साजैं ॥६३॥

रतन जडित कोपरि युग ल्याई ।

कंचन की भारीं छबि छाई ॥६४॥

अर्थ—पलंग से उतर कर श्री युगलसरकार उपरोक्त चौकी पर बिराजते हैं तब अष्ट यूथेश्वरीं श्री मंगल आरती की तैयारी कर आरतीं साजने लगती हैं ॥६३॥

और दो सखियां युगल रत्न जड़ित कंचन के कोपों को और युगल सखियां युगल कंचन की रत्न जड़ित भारियों को अति छवि भरी (अति शोभित) श्री सरयूजल से भर कर ले आई और श्री युगल प्राण प्रारेण के मुख मज्जन के लिये आगे की चौकी पर रख कर दर्शन करने लगीं ॥ ६४ ॥

॥ दोहा ॥

एक सखी निशि शेष लखि, सरजू जल के काज ।
रद मज्जन हित कनक घट, आनधरौ शुभ साज ॥ ६५ ॥

अर्थ—एक सखी ने कुछ शेष ही रात्रि बाकी देख श्री युगल प्रारेण के दंत धावन के लिये सुन्दर स्वर्ण घट में श्री सरयूजल परम सुगंधित वस्तुओं से युक्त सुन्दर बनाकर शुभमंगलमय सजाय के पहले से लाकर जो रखलिया था सामने लाकर रखदिया (इसकी यही सेवा है) ॥ ६५ ॥

चौ०—लघु प्यारी सुगंध रज भरी ।

लिये दतूइन सखी युग खरीं ॥ ६६ ॥

हाँस बिलास विनै मिसु प्यारे ।

मज्जन के हित चरण पसारे ॥ ६७ ॥

अर्थ—प्यारी मधुर सखियाँ (मंजरीं रूप यूथेश्वरीं) सुन्दर मधुर मधुर मणि जड़ित तशतरियों में परम सुगंधित वस्तुयें मिश्रित दंत मज्जन लिये दोनो ओर खड़ी हैं और दो प्यारी सखियां सुन्दर मणि जड़ित डंडिन में अति मृदुल सजीसजाई प्रभातीं लिये दोनो ओर खड़ी हैं ॥ ६६ ॥

प्रिय सखियां नाना प्रकार के हाँस बिलास अनेकन प्रकार की बिनय श्री दंत मज्जन के लिये कर रही हैं जिस हाँस बिलास युक्त बिनय सुनकर इसके ही मिसु द्वारा श्री युगल सरकारजी ने श्री युगल चरण-

रविन्दों को धुलाने के लिये पसार (फैला) दिये अर्थात् ॐ ब्राजने की चौकी से चरणचौकी पर चरणरविन्दों को रखदिया जिसपर मणिमय परम सुन्दर पात्र रखे हुये हैं दोनों ओर दंतधावन सामग्री लिये सखियां प्रस्तुत हैं (कोई भारी, कोपर, प्रभाती, अंजन, पीकदान, उगलदान इत्यादि ॥ ६७ ॥

चौ०—पग प्रछालि कर कमल धुवाये ।

सुरभीरली दतूइनि कराये ॥६८॥

कर दतूइनि बैठे पिय प्यारी ।

मंगल थार दृष्टि तहँ भारी ॥६९॥

अर्थ—प्रथम अर्घ दे जल उतार अर्थात् प्रथम अर्घ पादादिक विधि पूर्वक श्री युगल चरण कमलों को धुलाय स्वच्छ सूखे वस्त्र से पोछ तथा श्री युगल हस्त कमलों को धुलाय सूखे वस्त्र से पोछ कर दोनों ओर की सखियों ने मणि जड़ित तश्तरियों में नाना सुगंध युक्त दंत मंजन को बड़े अनुराग पूर्वक श्री युगल सरकारों के हस्त कमलों के निकट कर दंत मंजन कराया पुनः अति सुन्दर मणि जड़ित डंडियों में अति कोमल लच्छेदार प्रभाती अनेकों सुगंधियों में तलीं हुई श्री युगल हस्त कमलों में दे बड़े आनंद पूर्वक श्री युगल सरकारों को प्रभाती कराई ॥६८॥

इसके अनंतर रद मंजनादिक कर दोउ सरकारजी मणि मय सिंहासन पर (जहां पहले से ही प्रिय परिकरों ने परम कोमल बिछावट सुन्दर तकियादिकों से सुसज्जित कर रक्खा है) विराजे यहां मंगलादर्श (परम मंगलीक वस्तुओं से पूर्णतया सजे सजाये) थार सन्मुख चौकियों पर रखे गये जिनको श्री युगलसरकारों ने देखा अथवा जिनपर दृष्टि डाली ॥ ६९ ॥

चौ०—पुनि सुगंध मय हार सुहाये ।
 लाल लाड़िली उर पहिराये ॥७०॥
 थार मध्य जो पुष्प सुहाये ।
 इक लै सिय पिय घ्राण कराये ॥७१॥

अर्थ—फिर प्रिय सखियों ने परम सुगंधित सुन्दर फूलों के हार दोउ सरकारों को पहिनाये जो कंठ से उरस्थल तक अति शोभित हुये ॥ ७० ॥

फिर अनेकों प्रकार के परमसुगंधित पुष्प समूह जो युगलधारों में भरे हुये रक्खे हैं उनमें से एक पुष्प को लेकर स्वयं श्री सियजू ने निज कर कमलों से श्री प्रीतमजी को घ्राण कराया ॥ ७१ ॥

चौ०—लाल पुष्प लैकर रंग भीनी ।
 प्यारी घ्राण करत सुख दीनी ॥७२॥
 पुनि दै पुष्पांजलि रँग भीनी ।
 विधि कर दोउ कर आरति लीनी ॥७३॥

अर्थ—इसके अनंतर श्री प्यारे लालजी ने सुगंधित पुष्पों को ले कर निज कर कमलों से श्री प्यारी को घ्राण कराये । इस प्रकार श्री प्राण प्यारेजी तथा श्री प्राणप्यारीजी परस्पर प्रेम रंग में भीजे हुये परस्परपुष्प घ्राण कराय परम सुखी हुये (तत्सुख भाविका प्रिय सखियां भी श्री प्राणप्यारेन को परस्पर सत्सुखी परम आनंद मय देख अति आनंदित हुई ॥ ७२ ॥

फिर श्री सर्वेश्वरीजी अपने दोनों हस्त कमलों में आरती लेकर प्रथम अर्घादिक पट फेर अर्थात् आरती की प्रथम विधि कर श्री युगल सरकारों की यथोचित क्रमानुकूल आरती कर पुष्पांजलि फूलों की वर्षा

करती हुई दोउ प्रभुन के दर्शनानन्द में मग्न होरही हैं-अब आगे आरती क्रम वर्णन करेंगे ॥ ७३ ॥

॥ दोहा ॥

चारि आवरन चरण पुनि, कटि युग मुख पर एक ।
सप्त आवरन सर्व अंग, विधियुत करि सविवेक ॥ ७४ ॥

अर्थ—श्री नाभा स्वामीजी कहते हैं कि चार वार युगलश्री चरणारविन्दों की दोवार श्री कटि प्रदेश की, एकवार श्री मुख कमलकी, और फिर सात वार श्री सर्वांग की इस प्रकार जैसी कि विधि है सकल विधिपूर्वक अर्घ वस्त्रादिक कर श्री प्राणप्यारेजी की मंगल आरती हुई ॥ ७४ ॥

चौ०—पुनि सिय आरती कर सुख पागी ।

अर्घ देय तन मन अनुरागी ॥ ७५ ॥

पट फेरत निज हृदय लगावत ।

करि प्रणाम बहु विनय सुनावत ॥ ७६ ॥

अर्थ—प्रथम श्री प्राणप्रियजी की आरती कर फिर प्राणप्यारी श्री सियजी की सांगोंपांग आरती की और अर्घादिक जल वस्त्र फेर तन-मन से परम अनन्दित, सुखी हुई ॥ ७५ ॥

प्रिय परिकर श्री युगल प्रिया प्रीतिमजी की अरिष्ट निवारणार्थ वार २ वस्त्र फेरती हैं और उस पटको अपने हृदय से लगाती हैं कि इनके समस्त अरिष्ट (नजर वगैरह) हमारे ऊपर आजाय अतः इन भावों से वस्त्र फेर अपनी २ इच्छानुकूल भावों से श्री सरकारों से अनेकों भांति की विनय कर प्रणाम करती हैं (जुहार करती हैं) ॥ ७६ ॥

(इति मंगल आरती)

चौ०—निज २ भांति विनय सब करहीं ।

हांस विलास लाल मन हरहीं ॥७७॥

छिनक बैठि कछु मिसु उठ चले ।

आलस सहित नैन रँग रले ॥७८॥

अर्थ—इस प्रकार अपनी २ इच्छानुकूल सब प्रिय सखियां विनय करती हुई विनय द्वारा हांस विलासादि अनेकों प्रकार के कर श्री प्राण प्यारे लालजी के मनको आकर्षित करती हैं (रिभाती हैं, मनहरती हैं) ॥७७॥

इस तरह से मंगल आरती, विनय और हांस विलासादि हो जाने के अनंतर थोड़ीदेर परम मंगल मय आसन पर बैठि किसी मिसु द्वारा अर्थात् कोई मिसु लेकर श्री प्राण प्यारे सुन्दर मंगलासन से उठ कर चल दिये अभी आप आलस से रहित नहीं हुये हैं अर्थात् नेत्रों में आलस का रंग चढ़ा है अतः वह उनींदे नैनों की अनुपम शोभा हो रही है ॥ ७८ ॥

चौ०—उठत जम्हांत अंग अंग मोरें ।

सो छवि लखि सखियन तृन तोरें ॥७९॥

कोउ सखि फूल माल पहिरावति ।

कोउ नैनन्हि कछु सैन जनावति ॥८०॥

अर्थ—(अब श्री युगल सरकार अपनी इच्छानुसार ही कोई मिसु लेकर उठ चले क्योंकि बहुत सी परिकर सखियां अपनी २ कुंजनों में जहां तहां बैठी हुई आपकी राह देख रही हैं और सेवा सौज के साथ आपके दर्शन को आकुल हो रही हैं अतः उनकी सेवा ग्रहण कर उनकी अभिलाषा पूर्ण करने के लिये आप उनके यहां पधारग) (मंगलासनसे) श्री युगल सरकार जम्हाई लेते और अंग २ को मोरते हुये वहां से उठे

हैं इस समय की छवि देख २ सखियां श्री युगल छवि पर तृण तोर २ बलैयां लेती हैं (अलाय बलाय अर्थात् नजर भाड़ने का भाव ही तृण तोरने तथा बलैयां लेने में हैं) । ७९ ॥

जिन सखियों ने (जिनकी यह सेवा है) परम सुगंधित फूल मालायें आपके लिये गूँथ रक्खी हैं वह श्री युगल सरकारों को पहिरा रही हैं कोई सखियां (नेत्रों के इशारों से) नैन सैन द्वारा यह जनाती हैं कि चलिये अब हमारे यहां भी चलिये अतः इस प्रकार बुलाती हैं (साफ मुंह से अपने यहां के लिये कहने में संकोच लगता है) ॥ ८० ॥

चौ०—कोऊ कह लाल स्वयं सुनि लीजै ।

यह मिसुरहि इक जण सुख दीजै ॥ ८१ ॥

जब आरत जन की सुधि आई ।

मंद हंसत गवने रघुराई ॥ ८२ ॥

अर्थ—कोई सखियां श्री सरकारों से विनय पूर्वक कहती हैं कि हे लालजी आप स्वयं जरा हमारी बात तो सुनि लीजिये और इसी बात ही के बहाने से कुछ देर हमारे यहां ठहर कर हम सब दर्शनाभिलाषी परिकरों को दर्शनों का सुख दीजिये (हमारे दोउ प्राण प्यारे भोले भाले सीधे साधे सहज प्रेम के बशीभूत तो हैं ही—इस प्रेम के अतिरिक्त कोई भी उपचारादिकों से आप नहीं प्राप्त हो सकते अर्थात् विना आपकी कृपा व प्रेम रूपी उपचार के वहां पर किसी की भी गम्य नहीं) अतः सखियों ने अपनी प्रेम रसपूर्ण बातों द्वारा श्री सरकारों को ठहराही लिया (आप वहीं ब्राजगये) ॥ ८१ ॥

इसके बाद जब आपको आरतजनों का स्मरण आया तब आप मंद २ मुस्कराते हुये वहां से उठ चले (हँसते २ आरतजनों की ओर पधारे) ॥ ८२ ॥

चौ०—जहँ २ सखी सौज निज लीन्हें ।

प्रीतम मग चितवत चित दीन्हें ॥८३॥

कोउ सखि परदन लगीं निहारैं ।

दम्पति छवि लखि तन मन वारैं ॥८४॥

अर्थ—जहां तहां सखियां अपनी २ सेवा सौज सामग्री लगाये श्री प्रिया प्रीतमजी की राह चित्त लगाकर चितै रहीं हैं ॥ ८३ ॥

कोई सखियां अपनी २ कुंजों में परदों के पास खड़ी हुई बाहर की ओर अवाई के लिये निहार (देख) रहीं हैं अर्थात् बाट जोह रहीं हैं कोई श्री प्राणवल्लभ जी व प्रियाजी की अनूपम छवि के दर्शन कर तन मन न्योछावरि कर रहीं हैं ॥ ८४ ॥

चौ०—जब देखे आवत रघुराई ।

मणिन जटित चौकी जुग ल्याई ॥८५॥

अर्थ—जब सखियों ने देखा (जो परदे के पास खड़ी हुई अवाई की राह देख रही थीं व और भी) कि श्री सरकारजी सहित श्री किशोरीजी के पधार रहे हैं तो ❀अति शीघ्रता पूर्वक सुन्दर मणि जटित दो स्वर्ण चौकियां लाकर अंतःपुर के सर्व तोष भवन में रख दीं ॥ ८५ ॥

॥ दोहा ॥

नैन सैन सों विनय करि, बैठारे रघुनाथ ।

प्रात आरती कर सबै, लोचन किये सनाथ ॥८६॥

अर्थ—और जब श्री युगल सरकार आगये तब सखियों ने अपने नैन सैन द्वारा अर्थात् अपने नेत्रों से ब्राजने का संकेत किया और दोनों हाथ जोड़ कर कोमल मधुर स्वर से ब्राजने की विनय कर श्री प्रिया

प्रीतमजी को उन्हीं दो (पूर्वोक्त) चौकियों पर बैठाया-और फिर मंगल-लीक मंगल की सौज लिये जो सखियां पहले ही से प्रस्तुत थी उन सबों ने प्रात मंगल आरती कर अपने २ लोचनों को सफल किया । (लोचन किये सनाथ का भाव यह है-कि जो नेत्र अपने स्वामी के दर्शन बिना अनाथ हो रहे थे सो अपने मालिक को देख सनाथ होगये) ॥८६॥

चौ०-पुनि आई अगनित सखी तहँ ।

सहित प्रिया चौकी बैठे जहँ ॥८७॥

सो सब निज २ सौज ले आई ।

दम्पति सुमन माल पहिराई ॥८८॥

अर्थ—श्री युगल प्राण प्यारेजी अंतःपुर के सर्व तोष भवन में सिंहासन रूप चौकियों पर ब्राजमान हैं तहां पर अनंत परिकर अपनी २ सेवा सौज सामग्री ले २ कर आगई कोई प्रिया प्रीतमजी को परम सुगंधित सुन्दर पुष्प मालायें पहिना रही हैं ॥ ८७-८८ ॥

चौ०-कोई गुलाब की फूहीं करें ।

कोई सुगंधि ले आगे धरें ॥८९॥

कोई प्रीतम को बदन निहारें ।

पलक परै तिन्ह वरजि निवारें ॥९०॥

अर्थ—कोई सखियां गुलाब पासों में सुन्दर शीतल गुलाबजल भरे हुये पेच द्वारा गुलाबपास के महीन २ छिद्रों से गुलाबजल की फूही कर रहीं हैं, कोई नाना प्रकार के परम सुगंधित इत्रों से भरे इत्रदानों को श्री सरकारों के सामने रख देती हैं ॥ ८९ ॥

कोई सखियां श्री प्राणप्यारे प्रिया प्रीतमजी के श्री मुख कमल के दर्शन करती हुई अपने पलकों को गिरने से रोक रही हैं (बरजिने का भाव यह है कि ऐ पलको दर्शनों में क्यों बाधा डालते हो नेत्रों को क्यों इक टक दृष्टि से दर्शन कर सफल नहीं होने देते अतः इन पलकों के गिरने से उनको असीम दुख होता है) अर्थात् बरजि कर इस भाव द्वारा पलक रोक कर इक टक दर्शन करने का प्रयत्न कर रही हैं ॥९०॥

चौ०—कोउ रजनी* की बात सुनावें ।

यहि बिधि दंपति सँग बतलावें ॥६१॥

कोउ चांवर व्यंजन शिर ढारें ।

रघुवर लखि २ तनमन वारें ॥६२॥

अर्थ—कोई सखियां गत रात्रि की बातें सुनाती हैं और इसी के बहाने से श्री युगल सरकार जी के साथ वार्तालाप करने का और उनके परम प्रिय मधुर बचनों के श्रवण करने का आनंद ले रही हैं ॥९१॥

कोई चंवर दुर कर सेवा कर रही, कोई विजन से हवा कर रही हैं और साथ ही साथ सेवा कर श्री प्रिय प्रीतमजी की छवि निहार अपना तनमन सर्वस्व निछावरि कर रही हैं ॥९२॥

चौ०—पुनि कोउ सखि आरती उतारें ।

कोउ ठाढ़ी पिय बदन निहारें ॥६३॥

भानु उदय आगम लखि परै ।

बेद वंदि गुण गावत खरे ॥६४॥

अर्थ—इसके बाद कोई (जो सखियां आरती साज कर आरती करने के लिये बैठी हुई आप की बाट देख रही थीं सो) सखियां आप

की आरती उतार रहीं अर्थात् कर रहीं हैं कोई खड़ी २ श्री प्राणप्यारेन के मुखाम्बुज की अनूपम सुन्दर छवि अवलोकन करते २ देखते ही रह गई हैं। इस प्रकार अनन्त पक़िर अपनी सेवा में तत्पर हैं ॥९३॥

कि सूर्योदय का आगम लख परने लगा अर्थात् सूर्योदय होने का समय ज्ञात होने लगा (क्योंकि वेद रूपी बंदीजन बाहर के आवण में श्री युगल सरकार जी के गुण गाते २ प्रातः काल के हाने को दर्शाने लगे अर्थात् अपनी वेद ध्वनि में सूर्योदय की सूचना देने लगे (इनकी यही सेवा हैं) ॥९४॥

चौ०—पुर बासिन के सुत अति प्यारे ।

प्रभु मुख दर्शन नेम संवारे ॥६५॥

निज २ कुल ललना छवि छाई ।

सिय पौरो खिरकी दिशि आई ॥६६॥

अर्थ—श्री अवध बासियों के अति प्रिय बालक (जो श्री रामचन्द्र जी से प्रेम करते हैं वे लड़के अपने माता पिताओं को विशेष प्यारे हैं जिनके प्रातः काल उठकर सर्व प्रथम श्री युगल सरकार जी ही के मुखाम्बुज दर्शन का नेम हैं (जब तक वह दर्शन नहीं कर लेते तब तक और नित्य कर्म भी नहीं करते) जो अपने नेम को अच्छी तरह सभली भांति संवारते हैं वे अवध निवासी बालक दरवाजे पर खड़े हुये बाट जोह रहे हैं (इन बालकों के आने की सूचना वेद रूपी बंदी गन अपनी वेद ध्वनि में गायन कर सुधि कराते हैं) ॥९६॥

और निज कुल ललनायें रघुबशियों की पतोहू (जो अति सुंदर छविवाली जिनका नेम सर्व प्रथम श्री किशोरी जी के दर्शन का है) जो अति छवि से छाई हुई श्री किशोरी जी के दर्शनार्थ अंतःपुर के सर्व तोष भवन में खिरकी के दरवाजे से आई और मर्याद पूर्वक देखा की

अभी श्री सियजू सरकार के साथ ब्राजमान हैं सन्मुख न होने के कारण अटारी पर चढ़ गई और ॥९६॥

चौ०—ते बहु लखत अटारिन खरीं ।
लगीं भरोखा आनन्द भरीं ॥९७॥

अर्थ—यह समस्त ललनाये चारो ओर भरोखों से श्री युगल सरकार की अनूपम भांकी के दर्शनानन्द में मग्न हो कर आनन्द मयो जोड़ी को अवलोकन करने लगीं ॥९७॥

चौ०—सखा अनुज जो प्रभु को प्यारे ।
मग जोवत कोउ खड़े दुआरे ॥९८॥
दासन पूछि २ सुधि लेहीं ।
निज २ मन अवलंबन देहीं ॥९९॥

अर्थ—श्री रघुनाथ जी के परम प्रिय भाई और सखागण श्री युगल सरकार जी की सर्वतोष भवन में अवाई की राह देखते हुये दरवाजे पर खड़े हैं कि कब अवाई होय और कब हम दर्शन पावें ॥९८॥

ये सब मंजु (मधुर) सखाओं से पूछि २ कर धैर्य धारण करते हुये अपने २ मन को यह अवलंब देते हुये कि सरकार (सर्वतोष में) पधारने ही वाले हैं दर्शन के इच्छुक हो रहे हैं ॥९९॥

॥ दोहा ॥

आरत जन अरु रसिक जन, परिचारक जे दास ।
मग जोवत ठाढ़े सकल, उत्थापन की आस ॥१००॥

अर्थ—सर्व तोषभवन के द्वार पर परम आरतजन, रसिकजन जो श्री प्रीतमजी के रस में छके परम भावोन्मत्त और परिचर्या करने

घाले दास जन, खड़े २ श्री युगल सरकार के अंतःपुर के सर्वतोष भवन से उत्थापन ॐ होने की राह देख रहे हैं कि कब श्री सरकारेनजी का बाहर के सर्वतोष में आगमन हो और कब हम अपने नित्त नेमानुकूल सेवा कर अपनी अभिलाषा पूर्ण करें ॥ १०० ॥

चौ०—तिनकी सुधि मिसु गुनि जन गाये ।

तब प्रीतम उठि बाहर आये ॥ १०१ ॥

अर्थ—(प्रातःकाल गुणीजन जो श्री सरकारेन के गुणानुवाद राग रागनियों में गाते हैं) इन गुणीजनों ने अपने गाने के बहाने द्वारा श्री प्रीतमजी को आरतजनों की सूचना दी अर्थात् ऐसे गाने गाये जिनके श्रवण मात्र से यह ज्ञात होजाय कि आपके दर्शनाभिलाषी आरतजन आपके दर्शन को अति आकुल हैं अतः जिन गायनों को सुन कर श्री रामचन्द्रजी अति शीघ्रतो पूर्वक बाहर के सर्वतोष में आगये ॥ १०१ ॥

और भीतरी सर्वतोष में श्री किशोरीजी ही रहीं यहाँपर समस्त ललनायें एकत्रित हो श्री किशोरीजी से बर्तालाप कर दर्शनानन्द लेंगी क्योंकि यह श्री रघुनाथजी के सन्मुख नहीं आसकती थीं (यहाँ से श्री किशोरीजी समस्त नेमी ललनाओं की अभिलाषा पूर्ण कर बाहर सर्व तोष में पधारेंगी और फिर बाहर के प्रेमीजनों को युगल दर्शन दे उनके नेत्र सफल करेंगी)।

चौ०—हेम सिंहासन परम सुहाये ।

तहँ प्रभु बैठि बदन दिखराये ॥ १०२ ॥

दास सखा जो प्रभु चित चहे ।

निज २ समय टहल सुख लहे ॥ १०३ ॥

अर्थ—बाहरी सर्वतोष में अनेकों स्वर्णसिंहासन शोभित हो रहे हैं

ॐ उत्थापन तो हो ही आया है पर इन सबको तो जब दर्शन मिलें तभी उत्थापन है ।

जिन्हें परिकरों ने पहले से ही साज रक्खा है उनमें से सर्व श्रेष्ठ एक सिंहासन पर श्री रघुनाथजी ने अकेले ही बैठ कर सबको अपने मुखान्मूज के दर्शन दिये ॥ १०२ ॥

इसके बाद अब मधुर दास, सखादि जो आपकी राह ही देख रहे थे वे सब श्री प्रीतमजी के चित्तानुसार समयानुकूल अपनी २ सेवा दहल करते परम सुखी हुये—जब श्री रघुनाथजी का सर्वतोष में पधार कर ब्राजना होगया ॥ १०३ ॥

चौ०—सो लखि प्रथम लखण तहँ आये ।

संग लिये कोउ सखा सुहाये ॥१०४॥

महि शिर धरि प्रणाम तिन्ह कीन्हा ।

निज बैठक आसन सुख लीन्हा ॥१०५॥

अर्थ—तब सर्वतोष भवन के बाहरी दरवाजे से ही देख कर कि❀ आवाई हो गई है सर्व प्रथम श्री लषणलालजी अपने साथ कोई रघुवंशी सुन्दर सुहाये (परम प्रिय) सखाओं को लेकर सर्वतोष में आये ॥१०४॥

और श्री रघुनाथजी के सामने पृथ्वी में शिर रख साष्टांग दंडवत प्रणाम कर निज मन भावते सुन्दर सखाओं के साथ श्री रघुनाथजी की आज्ञा पाय अपने निज बैठक (आसन) पर ब्राज कर परम सुखी हुये ॥१०५॥

चौ०—कुश ध्वज कुँवरि रवन दोउ भाई ।

आये अति सुन्दर सुख दाई ॥१०६॥

अर्थ—श्री मिथिलेशजी के भाई कुशध्वज की दोनों पुत्री मांडवी और श्रुतिकीर्तिजी रवन (रवण करने वाले) श्री भरतजी तथा श्री शत्रु-हनजी दोनों भाई श्री लषणलालजी के बाद सर्वतोष में पधारे जो अति सुन्दर और अति सुखदाई हैं अर्थात् आप दोउन की अति सुन्दर जोड़ी

हे और अपने गुणों से श्री रघुनाथजी को अत्यंत सुखी करने वाले हैं
वा सबको अति सुन्दर सुखदाई हैं ॥ १०६ ॥

॥ दोहा ॥

तेहि विधि दंड प्रणाम करि, बैठे आयसु पाय ।
कुलके बालक सखा जे, निरखत नित रघुराय ॥ १०७ ॥

अर्थ—श्री लखनलालजी की तरह विधि पूर्वक साष्टांग दंडवत
प्रणाम कर यह दोनों भाई तथा और भी रघुवंशी बालक, सखागण
(जिनका नित्य दर्शन करने का नेम है) श्री रघुनाथजी की आज्ञा पाकर
अपनी नित्य की आसन पर ब्राज परम सुखी हुये ॥ १०७ ॥

॥ दोहा ॥

निज २ मन्दिर से चलीं, संग सखिन के यूथ ।
अंतःपुर जहँ जनकजा, ललना कोटि बरूथ ॥ १०८ ॥

अर्थ—बाहरी सर्वतोष में श्री प्रीतमजी अपने भाइयों सखाओं
परिचारिकों इत्यादि के साथ ब्राज रहे हैं इसी तरह भीतरी सर्वतोष में
भो श्री प्रियाजी भी अपनी सखियों दासियों सहित शोभित हैं अतः
समय अनुकूल देख कर रघुकुल बधूं अपनी संग सहेलियों के साथ यूथ
के यूथ अंतःपुर के भीतरी सर्वतोष में श्री किशीरीजी के पास आने
लगी । इसी प्रकार करोड़ों ललनाओं के भुंड के भुंड आने लगे ॥ १०८ ॥

चौ०—श्री मांडवी प्रथम शिरनाई ।

जनक लली सनमानि बुलाई ॥ १०९ ॥

पुनि आई लघु भगनी सियकी ।

श्रुति कीरति आई हित जियकी ॥ ११० ॥

अथ—सब प्रथम श्री मांडवीजी श्री किशोरीजी के सम्मुख अपनी समस्त सखियों सहित सर्वतोष में आई और यथोचित शीश नवाय जुहार कर श्री किशोरीजी से सन्मान (आइये ब्राजिये) आज्ञा पाय उनके समीप एक आसन (जो इनकी नित्य की आसन है) पर अपनी सखियों सहित ब्राज गई ॥ १०९ ॥

इसके बाद श्री उर्मिलाजी (लघु बहिनी सियकी) को अपनी सखियों सहित आया देख इनको भी सन्मान कर कि (आइये ब्राजिये) निज आसन पर ही ब्राजने की आज्ञा दे (जो इनकी नित्य की ही आसन है) सखियों को भी बैठने की आज्ञा दी । अतः श्री उर्मिलाजी आज्ञा पाय शीश नवाय जुहार कर अपनी सखियों सहित अपनी आसन पर ब्राज गई इसी प्रकार श्री श्रुतिकीर्तिजी श्री किशोरीजी की जिय की प्यारी अपनी सखियों सहित आकर उसी उपरोक्तानुसार सन्मान आज्ञा पाय निज आसन पर शीश नवाय जुहार कर सखियों सहित ब्राज गई ॥ ११० ॥

चौ०—अरु ललना जे समय सयानी ।

ते आई सिय लखि सनमानी ॥ १११ ॥

तब सिय प्रीतम ढिग चलि आई ।

कुवरनि युत बहु तिय समुदाई ॥ ११२ ॥

अर्थ—इसके अनंतर और रघुवंशियों की बधुयें जो समय का बड़ी चतुर हैं यह देख कर कि अब समय होगया अब श्री किशोरीजी हाँ अकेली अपनी सखियों बहिनों और परिकरों के साथ भीतरी सर्वतोष में ब्राजी होंगी श्री रघुनाथजी की जवाई बाहरी सर्वतोष में हो गई होगी । अतः अपने दर्शनों का समय देख भीतरी सर्वतोष में आने लगीं श्री किशोरीजी भी सबका सनमान कर ब्राजने की आज्ञा दे २ निज २ आसन पर बैठालने लगी अब जो ललनायें श्री रघुनाथजी के सामने

नहीं आसकती थीं वह सब दर्शन पा चुकी जब कोई बाकी न रहा तब श्री किशोरीजी ने सबका प्रबोध कर सबको दर्शन देकर सबकी अभिलाष पूर्ण कर बाहरी सर्वतोष की ओर सब सखियों समाज के साथ चलीं ॥ १११ ॥

और तब समस्त कुंवरि ललनायें जहां तक वे श्री किशोरीजी के साथ जा सकती थी चली गईं फिर वहां से (मर्याद के बाहर) अपनी सखियों के साथ श्री सियजी बाहरी सर्वतोष में श्री किशोरजी के समीप गईं ॥ ११२ ॥

चौ०—अंतःपुर की गलीं सुहाईं ।

तेहि मग बहु ललना चलि आईं ॥ ११३ ॥

प्रभु रुख लखि सिय बैठी सँगहीं ।

निज २ परिकर युत सुख रँगहीं ॥ ११४ ॥

अर्थ—वे कुंवरि और ललनायें जो अपनी मर्याद तक श्री सियजी के साथ २ आई थीं वह सब अंतःपुर की गलियों द्वारा बाहरी सर्वतोष के अटारियों छज्जों पर जाकर झरोखों द्वारा श्री युगल सरकारों के दर्शन करने लगीं (जैसा पूर्व कहा गया है ९६ छंद के अर्थ में) अर्थात् जहां से जिसको मर्यादा पूर्वक अच्छी तरह दर्शन होता है वहां से अवलोकन करने लगीं ॥ ११३ ॥

श्री प्यारीजी बाहरी सर्वतोष में पधार कर श्री प्रीतमजी का रुख (इच्छा) देख साथ ही सिंहासन पर ब्राज गईं क्योंकि श्री युगल दर्शनाभिलाषी जनों के युगल दर्शनों की अति उत्कंठा जान श्री प्रीतमजी की यह इच्छा हुई कि श्री प्रियाजी भी आजावें तो इनकी इच्छा पूर्ण हो (अतः १ रुख देख कर श्री प्रियाजी भी आकर साथ में ब्राज गईं)

अपने २ परिकर अपनी २ ओर विराज रहे हैं अर्थात् श्री रघुनाथ जी के परिकर इनकी ओर और श्री सीताजी के ❀ उनकी ओर बैठे हुये अपनी अपनी सेवा में दत्तचित्त से लगे हुये सेवा सुख आनन्द में रंगे सुखी हो रहे हैं और साथही साथ दोऊ श्री प्राणप्यारेजी भी परस्पर सुखानन्द में भीज रहे हैं । इसप्रकार कि— ॥ ११४ ॥

चौ०—अग्रभाग सुभगा अति सोहे ।

सहजा हाँस बिलासनि मोहे ॥११५॥

श्री सरयू भारीं लिये ठाँढ़ी ।

पान दाँन सुख तुलशी बाढ़ी ॥११६॥

अर्थ—श्री सुभगा जी आगे के भाग में अति शोभित हो रही हैं और श्री सहजा जी अनेकों हांस बिलास द्वारा दोऊ सरकारेन के मन मोह २ प्रसन्न कर रही हैं ॥११५॥

कोई श्री सरयू जल से भरी हुई मणि जड़ित सोने की भारियां लिये, कोई मणि जड़ित पान दान लिये, कोई सुन्दर श्री तुलसी जी के दल लिये सुख पूर्वक सेवा में खड़ी हुई हैं ॥११६॥

चौ०—कमला बिमला चँवर दुरावैं ।

चन्द्रकला कछु गान सुनावैं ॥११७॥

और सवे निज टहल सुधारैं ।

ठाँढ़ी दंपति निकर सवारैं ॥११८॥

अर्थ—श्री कमला जी और श्री बिमला जी दोनों ओर चँवर दुला रही हैं और श्री चन्द्रकला जो परममधुर मनोहर स्वर से गायन कर

राग रागिनी सुनारहीं हैं ॥ ११७ ॥

और दूसरी सखियां इसी प्रकार अपनी २ सेवा में संलग्न बड़े अनुराग पूर्वक अति सावधानी के साथ सुधार कर सेवा करती हुई समूह के समूह श्री युगल प्राण प्यारेन के दर्शनानंद में मग्न हो रही हैं ॥११८॥

(अब श्री स्वामी जी भीतरी सर्व तोष का वर्णन तथा श्री सियाजू का श्री प्रीतमजी के पास आगमन तक वर्णन कर अब बाहरी सर्व तोष का वर्णन कर वहां की सेवा इत्यादि वर्णन करते हैं)

चौ०-प्रभु ढिग तीनहुँ बन्धु सुहाये ।

यह लखि दास आरती ल्याये ॥११६॥

बहु दीपक युत आरती राजी ।

बहु पुष्पन की विधि सों साजी ॥१२०॥

कर्पूरादि सुगंध मिलाये ।

घृतसँयोग बहु सुरभि सुहाये ॥१२१॥

सुमनन भरे थार धरि आगे ।

बहु मेवन युत सुघर सुभागे ॥१२२॥

ताम्बूलादि सौज बहु धरे ।

उरन बहुत विधि गजरा परे ॥१२३॥

सब द्वारन के खुले किवारे ।

तेहि सब दर्शन नेम संवारे ॥१२४॥

भांति अनेक बाजने बाजे ।

घर २ प्रति अति मंगल साजे ॥१२५॥

अर्थ—पुर बालक तथा दासादिक अभी बाहर ही दरवाजे के पास खड़े हुये हैं (जब तक बाहरी सर्व तोष में अपने २ सखाओं सहित श्री भरतलाल जी श्री लखणलाल जी श्री सत्रुहनलाल जी श्री राधव जी के पास आकर ब्राज गये और श्री सियजी भी भीतर सर्व तोष से आकर श्री रघुनाथ जी के साथ ब्राज गई हैं) अतः यह देख कर कि अब ऐकान्तिक समाज नहीं हैं बल्कि श्री युगल सरकार जी समस्त भाइयों परिकरों सहित ब्राजे हैं। यह दासादिक निज सेवा सौज सहित आरतियां साज कर भीतर सर्व तोष में आये ॥११९॥

बहुत सी बत्तियों तथा अनेकों तरह के फूलों से विधि पूर्वक सजाकर यह आरतियां बनाई गई हैं ॥१२०॥

यह बत्तियां भी अनेकों सुगंधित पदार्थों तथा कपूरादिक वस्तुओं से युक्त घी में डुबोई गई हैं जिनके प्रकाशित करने से सुन्दर शीतल सुगंधि फैल कर सुन्दर प्रकाश होता है ॥१२१॥

दासादिकों ने सुन्दर अनेकों प्रकार के सुगंधित पुष्पों से भरे हुये तथा पुष्प श्रृंगारों से पूर्ण और अनेकों भांति की सेवाओं से भरे सुन्दर मणि जड़ित कंचन के थार श्री सरकारेन के आगे रख दिये ॥१२२॥

और पानादि अनेकों तरह के सुगंधित ऋतानुकूल इतरों से भरे इतरदान पानदान सरकारेन के सामने रखे हुये और श्री युगल सरकारेन के कंठ से हृदय तक परम सुगंधित नाना प्रकारों के गजरे (हार) पड़े हुये अत्यंत सुशोभित हो रहे हैं ॥ १२३ ॥

जब सर्वतोष भवन के बाहर बड़ी भीड़ एकत्रित हो गई और समस्त दर्शनाभिलाषी दर्शन के नेमी प्रेमी दर्शनों के लिये व्याकुल होने लगे तब सर्वतोष भवन के चारों ओर के किवाड़े खोल दिये गये। जिससे कि सब नेमी प्रेमी श्री प्रिया प्रीतमजी के भली भांति दर्शन कर अपना नेम सवारते (पूरा करते) हुये परम सुखी हुये ॥ १२४ ॥

दरवाजों के पास २ सुन्दर अनेकों तरह के बाजे बज रहे हैं (नीचे जहां अभी दरवाजे खुले हैं) और अटारियों छज्जों पर पुर, कुल, बधुयें मंगल आरती सजाय २ कर वहीं से मंगल आरती कर रही हैं (जो भीतरी सर्वतोष से श्रीसियजी के साथ आकर अटारियों छज्जों पर चली गई थीं और भरोखों से दर्शन कर रही थीं) अतः इस प्रकार सुन्दर बाजने अर्थात् मंगल मय ध्वनि के साथ मंगल आरती की तैयारी हुई दर्शकों की भीड़ चारों ओर डट रही है बाहरी सर्वतोष में मंगल भाकी का अति आनंद लुट रहा है ॥ १२५ ॥

॥ दोहा ॥

अति प्रभु प्यारे सखा जे, हनुमदादि जे दास ॥
दंपति रुख लख आरती, कीन्हीं परम हुलास ॥ १२६ ॥

अर्थ—श्री रघुनाथजी के परम प्रिय सखाओं ने तथा श्री हनुमान जी आदि दासों ने श्री युगल प्राण प्यारेन का रुख देख कर तथा अपनी आरती सेवा का समय जान कर बड़े आनंद हर्ष तथा बड़े अनुराग पूर्वक मंगल आरती करने के लिये आरतियां उठाकर आरती करने लगे ॥ १२६ ॥

चौ०—यहि विधि प्रात आरती भई ।

सब लह दरस सरस सुख मई ॥ १२७ ॥

जिनको प्रभु दर्शन की आसा ।

कोउ न रह्यो बिन दरश निरासा ॥ १२८ ॥

कलुक बार प्रभु यहि मिसु रहे ।

हांस बिलास सकल सुख लहे ॥ १२९ ॥

अर्थ—इस प्रकार प्रात आरती (मंगलारती) हुई और समस्त

जन जो जिसरस के (जिस भाव के) अनुरागी रहे सो अपने २ रस भाव अनुकूल दर्शन कर परम रसमय परमानंद को प्राप्त हुये ॥ १२७ ॥

और श्री प्राणप्यारेन के दर्शनाभिलाषी सब दर्शन पागये कोई भी बिना दर्शन का निरासा पूर्वक न लौटा सबकी इच्छा पूर्ण हुई (क्योंकि भीड़ के कारण दर्शन कोई को न हो ऐसा न हुआ सभी दर्शन पागये) ॥ १२८ ॥

कुछ समय तक दर्शन देने के लिये ही आरती हो जाने के बाद श्री युगल प्रिया प्रीतमजी सर्वतोष में दर्शन देने के बहाने से ब्राजे रहे इस बीच में अपने २ अधिकार तक प्रेमीजन श्री प्रभु प्यारेन के साथ अनेकों तरह के हांस बिलास करते रहे और श्री मुख कमल की अनुपम परम मधुरी को अवलोकन कर और परम अमृतमयी श्री मुखवाणी श्रवणगोचर कर सब परमानंद सुख में मग्न हो गये अर्थात् हो रहे हैं ॥ १२९ ॥

॥ दोहा ॥

जेहि २ अंग को माधुरी, में मन लागो जासु ।
सोइ २ अंग निरखत सकल, मनमें परम हुलास ॥ १३० ॥

अर्थ—अब जिस २ अंग की माधुरी (सुन्दरता) में जिसका २ मन लग रहा है वह उसी अंगको इक टक बड़े अनुराग पूर्वक (बड़े आनंद के साथ) अवलोकन कर रहे हैं अर्थात् श्री अंग माधुरी निधि हैं अतः समस्त जन परमानंद के साथ सौन्दर्यता अवलोकन कर रहे हैं ॥ १३० ॥

चौ०—पग तल अरुण सु चिन्ह सुहाई ।

कोउ निरखत मन सुधि बिसराई ॥ १३१ ॥

कोउ सखि नख शिख दुतिहि सजावैं ।

निरख २ निज भाग्य मनावैं ॥१३२॥

अर्थ—कोई श्री चरणकमल के तलुवों के सुन्दर ४८ चिन्हों की ओर निरखते हुये अपनी सुधि बुधि बिसार लीन हो रहे हैं अर्थात् वह उसी ओर द्रष्टि लगाये इक टक देख रहे हैं ॥ १३१ ॥

कोई सखियां (युगल परिकर गन) श्री चरण कमल के नख से लेकर शिखा पर्यंत तक छवि (छटा) को अपने हृदय में सजा रहीं हैं और फिर प्रत्यक्ष देख २ कर अपने भाग्य की सराहना करती हुई कि धन्य हमारे भाग्यों को जो हमको इस अनुपम छवि के अबलोकन करने को सौभाग्य प्राप्त हुआ । आनंद में लीन हो रही हैं ॥ १३२ ॥

चौ०—कोउक स्याम पद प्रष्टि सुहाये ।

कोउ नूपुर खग मुषर लजाये ॥१३३॥

कोउ कटि किंकिनि ललित निहारैं ।

उदर रेख कोउ द्रष्टि न टारैं ॥१३४॥

अर्थ—कोई श्री स्याम चरण कमल के परम सुन्दर शोभा युक्त पिष्ट (पीछे) भाग को देख रहीं हैं, कोई सुन्दर मधुर २ पक्षियों के स्वरों को लज्जित करने वाले नूपुरों के शब्दों को तनमय हो सुन रहे हैं ॥१३३॥

कोई कटि प्रदेश (कमर) की परम सुन्दर मनोहर किंकिनी (करधनी) को निमेष रहित निहार रहीं हैं और कोई सखियां उदर रेखायें (त्रिवली) से अपनी द्रष्टि नहीं हटातीं हैं अर्थात् इकटक निहारतीं हुई लवलीन हो रहीं हैं ॥१३४॥

चौ०—कोउ भ्रगु पद कोउ माल सुहाये ।

कोउ श्री वत्स चिन्ह मन लाये ॥१३५॥

कोउक पदिक की रचना चितवैं ।

कम्बु कंठ रेखा अति हितवैं ॥१३६॥

अर्थ—कोई सखियां श्री भ्रगुपद को वक्षस्थल पर देखती हुई बेसुधि सीं हो रही हैं (शंका—श्री परात्पर ब्रह्म श्री राम स्याम अंग पर भ्रगु पद चिन्ह कैसा यह तो श्री विष्णुजी के हैं। समाधान—जब कार्य स्वरूप श्री विष्णु देव जी ने इस चिन्ह को वक्षस्थल पर धारण किया तब परम कृपा कर कृपा सागर श्री रामजी महाराज ब्रह्मादिकों के कारण के महाकारण रूप परात्पर प्रभु (श्री रघुनाथ जी) ने भी अपने वक्षस्थल पर इसे अति हर्ष पूर्वक धारण किया अस्तु) ऐसा रसिका चार्यों ने ॐ कहा है—कोई सखियां श्री प्राण प्यारे के उर में पड़ी हुई परम सुशोभित मालाओं को निहारती हुई परम सुखी हो रही हैं कोई सखियां श्री रघुनाथ जी के वक्षस्थल में दाहिनी ओर श्री किशोरी जी का श्री वत्स पीत चिन्ह को मन लगाकर अनुराग पूर्वक देख रही हैं ॥१३५॥

(पदिक हार उसको कहते हैं जो हार छाती के नीचे तक जिसमें दिव्य मणिजड़ित जडाऊ चौखटा नीचे झूमता हो) कोई सखी पदिकहार की शोभा चित्त लगा कर देख रही हैं और कोई संख सदृश कंठ की तीन सुन्दर परम हित रूप रेखायें जो कंठ में अति शोभित हो रही हैं तिन्हको निरखती हुई सुखी हो २ परमानन्द में सगत हो मुग्ध हो रही हैं ॥१३६॥

चौ०—कोउ भुज युगल देखि अति मोहैं ।

काम कलभ करमा लघु सोहैं ॥१३७॥

करज मनोहर देखि लुभानीं ।
रही चकित छबि देखि सयानीं ॥ १३८ ॥

अर्थ—कोई सखियां सरकार की कामदेव रूपी हाथी के बच्चों की युगल सूड़ा को लज्जित करने वाली (अर्थात् लघुता दिखाने वाली) श्री युगल आजानु बाहुओं पर अत्यंत मोहित हो रहीं हैं ॥ १३७ ॥

(करज अर्थात् कर से उत्पन्न हुई अँगुलियाँ) कोई हस्त कमलों की अँगुलियों की मनोहरता देख २ लुभा रहीं हैं और कोई सयानी सखियां छबि देख २ (सरकार की) अपनपौ बिसार रहीं हैं ॥ १३८ ॥

चौ०—कोउक चिबुक कोउ हांस मनोहर ।
कोउ प्रभु अधर अरुण अति सोहर ॥ १३९ ॥
कोउ रद पंक्ति सुभ्र चित लाये ।
कोउ कपोल मुलकनि मुसकाये ॥ १४० ॥

अर्थ—कोई सखियां श्री रामजी के चिबुक (टोड़ी) मध्य पीत बिन्दु की ओर देखती हुईं, कोई उनकी मंद २ मनोहर मुसकान को देखती हुईं, कोई उनके लाल २ सुन्दर ओठों को देखती हुईं मग्न हो रहीं हैं ॥ १३९ ॥

कोई उनकी सुन्दर मोती के समान स्वच्छ बिजली सदृश्य दुतिवाली दंत पंक्ति को चित लगाकर चित रहीं हैं कोई उनके सुन्दर दर्पण के समान चमकीले कपोलों को देखती हुईं मुसका रहीं हैं (क्योंकि वह अपना मुसकाने का प्रतिबिम्ब उनके कपोलों में देख रहीं हैं क्योंकि कपोल आदर्शवत् कह ही आये हैं) ॥ १४० ॥

चौ०—कोउ मकराकृत कुंडल देखें ।
कोउ मुक्ता भुमकनि अति पेखें ॥ १४१ ॥

कोउ त्रकुटी की बंक निहारैं ।

कोउक तिलक युग रेख बिचारैं ॥ १४२ ॥

अर्थ—कोउ मीनाकार सुन्दर कुडलों की ओर और कोई उन कुडलों में लगेहुये मोतियों के कुमकाओं की ओर अत्यंत अनुराग पूर्वक मन लगाय देख रही हैं ॥ १४१ ॥

कोई त्रकुटी (भौहों की) बंकता (धनुषाकार टिढ़ाई) को और कोई परम सुन्दर युगल तिलक रेखाओं की सौंदर्यता बिचारती हुई तिलकों को अबलोकन कर रही हैं ॥ १४२ ॥

चौ०—कोउ शिर पाग जरित लटपटी ।

कोउ अलकनि लटकनि अटपटी ॥ १४३ ॥

कोउ दंपति चितवनि कोउ निरखें ।

मंद हँसनि मनो आनंद बरखें ॥ १४४ ॥

अर्थ—कोई सखियां श्री सरकारजी के शिर में बँधी हुई पक्की मणियों से जड़ित लटकती हुई टेढ़ी (बांकी) पगड़ी को देख कर अपने मनको उस पगड़ीसे लिपटाय रही हैं कोई उनके घुंघुराले केशों (अलकों) की ओर जो स्वभाविक ही अटपटे (टेढ़े) पगड़ी के अगल, बगल, पीछे मुड़े हुये परम शोभित हो रहे हैं (लटक रहे हैं) मुग्ध भाव से देख रही हैं ॥ १४३ ॥

कोई दोनों प्राणप्यारेन की अनोखी परस्पर चितवनि को देख कर इकटक हो रहे हैं कोई उनकी मंद २ मुस्कान (हँसनि) को देख कर मग्न हो रही हैं मानो आनंद की वर्षा हो रही है अथवा यह मंद हँसनि नहीं आनंद की वर्षा है ॥ १४४ ॥

॥ दोहा ॥

यह विधि सबके नैन थकि, रहे माधुरी माहिं ।
सा लखि दंपति कोर द्रग, अरस परस मुसकाहिं ॥ १४५ ॥

अर्थ—इस तरह से समस्त दर्शन प्रेमी परिकरों के मन नैन श्री प्राणप्यारेजी की अनूप रूप माधुरी को अवलोकन करते हुये थकि रहे हैं अर्थात् परम विश्राम को प्राप्त हो रहे हैं (अचंचल हैं) समस्त परिकरों प्रेमी दर्शनाभिलाषियों की यह दशा देख कर श्री युगलसरकारजी परस्पर (एक दूसरे से) अपनी नैनों की कोरों द्वारा यह जना रहे हैं कि देखा सब जन प्रेमी भक्त के आवेश में कैसे पग रहे हैं सभा में बाजे हैं इससे परस्पर कहने सुनने का समय नहीं है अतः द्रग कोरों द्वारा उनके प्रेम की दशा को जनाते हुये हरस्पर मुसका रहे हैं ॥ १४५ ॥

चौ०—पुनि कोउ सखी धीर धरि गाढ़ी ।

जुग कर जोर विनय रस बाढ़ी ॥ १४६ ॥

अस्तान कुंज की बात जनाई ।

रुख लखि सुभग पालकी आई ॥ १४७ ॥

अर्थ—इतने में अस्तान (स्नान) समय सूचका एक सखी स्नान का समय देख कर बड़ा धैर्य धारण कर खड़ी हो दोनों हाथ जोड़ अत्यंत विनय पूर्वक विनय रस से भरे शब्दों में स्नान कुंज का स्मरण कराती हुई बोली कि हे श्री जीवन प्राणनाथ स्नान का समय हो गया है— इस बातको सुनते ही श्री युगल सरकारजी ने स्नान कुंज को पधारने का रुख किया कि हां ठीक है स्नानों को चलना चाहिये इस प्रकार श्री सरकारों का रुख देख कर दासी ने एक सुन्दर पालकी लायी ॥ १४६-१४७ ॥

चौ०—दम्पति उठि तेहि दिसि रुख कीन्हीं ।

मज्जन हित अनुजन सिख दीन्हीं ॥ १४८ ॥

आप चढ़े सुख यान सुहाये ।

सिय युत चलि अंतःपुर आये ॥ १४९ ॥

अर्थ—श्री युगल सरकारों ने सर्वतोप भवन से उठ कर स्नान कुँज की ओर पधारने का रुख कर अपने तीनों भाइयों को भी स्नान करने की आज्ञा देकर कि आप लाग भी अपने २ महलों को पधार कर स्नान करें क्योंकि स्नानों का समय हो गया है ॥ १४८ ॥

इस प्रकार से भाइयों को सीख देकर सभा बिसर्जन कर आप दोउ प्राण प्यारे सरकार सुन्दर सुखयान (पालकी) पर चढ़ श्री जनक राज नंदनीजी के सहित परम सुशोभित होते हुये अंतःपुर में आये (ले चलने वाली यानी पालकी में लगने वाली यहां दासियां ही हैं कहारों की यहां गम्य नहीं) ॥ १४९ ॥

॥ दोहा ॥

भरतादिक सह सखाजन, बिदा किये रुखपाय ।

चले निज २ स्नान ग्रह, तेहि बिधि तीनउ भाया ॥ १५० ॥

अर्थ—(जब श्री रघुनाथजी अपने भाइयों को स्नानों की आज्ञा देकर अंतःपुर पधारे और सब समाज किस प्रकार अपने स्थानों को गया उसी को संक्षेप रीति से श्री नाभा स्वामीजी कहते हैं) (जन समूह बाचक) भरतादिक सह सखाजन इन शब्दों से श्री नाभा स्वामी जी कहते हैं कि अपर सखा भ्रातागन व रघुवंशी जन (पुर बालक) व जो २ सभा में उपस्थित रहे सब श्री रघुनाथजी की आज्ञा (रुख) अर्थात् रजा पाकर यथोचित बंदना (प्रणाम) कर २ के अपने २ स्नान स्थलों को गये—(प्रथम (पूर्व) कह आये हैं कि श्री मांडवी आदिक

महारानियां जो सभा के ऊपर झरोकों से देख रही थीं । सभा बिसर्जन के पश्चात् जब श्री युगल सरकार अपने स्नान कुंज (अंतःपुर) को चले गये तो इन तीनों महारानियों के साथ जिस प्रकार श्री सीतारामजी पालकी पर चढ़कर चले गये थे (जोड़ी सहित) उसी प्रकार अवसरानुकूल मर्याद पूर्वक अपनी २ सवारियों पर निज २ परिकरों के साथ (जोड़ी से) अपने २ महलों के स्नानकुंजों की ओर यथोचित बंदन परस्पर कर तीनों भाई भी प्रस्थान किये (चलेगये) ॥ १५० ॥

॥ दोहा ॥

तब प्रभु सोभित जान पर, संग सखी समुदाय ।
निज २ साज सुभग लिये, स्नान केलि थल आय ॥ १५१ ॥

अर्थ—तब श्री युगल प्राण प्यारेजी परम सुन्दर सुखपाल पर चढ़े हुये संग में आगे, पीछे, अगल, बगल चारों ओर रुवा सौज लिये सखियों के समुदाय के सहित (जो अपनी २ सेवा सामग्री सुन्दर अपने हाथों में लिये हुये सवारी के साथ जा रही हैं) परम सुशोभित होते हुये मय अपने समाज के स्नान कुंज में आये ॥ १५१ ॥

चौ०—दोउ दिशि दंपति कुंज सुहाई ।
मध्य सुभासन बैठे जाई ॥ १५२ ॥
तहँ कोउ सखीं आरतीं उतारैं ।
कोउ विलास रस वचन उतारैं ॥ १५३ ॥

अर्थ—अब स्वामीजी स्नान कुंज का वर्णन करते हुये कहते हैं कि (जो श्री सरकारों के स्नान करने का स्थल है वह परम रमणीयता पूर्वक शोभित है उसके चारों ओर पुष्पबाटिकायें हैं जिनकी चारों ओर से परम सुगंध मय झरोके आ रहे हैं तिस पुष्पबाटिकायों के बीच में परम मनोहर चारों तरफ से सोपान युक्त एक ब्रह्म कुंड है) तिस कुंड

के दोनों ओर श्रीयुगल सरकारों के बिलग २ स्नान करने की युगल कुंजें हैं दोनों कुंजों के मध्य में परम सुन्दर एक बैठिका है जहाँ पर जाकर आप दोउ सरकार प्रथम ब्राजते हैं (यहीं पर वस्त्र उतारे जाते हैं और यहीं पर उपटन सुगंधित ऋताशुक्ल फुलेलादि आपके अंगों में मर्दन किया जाता है) वहीं (सुभासन पर बैठेहुये) श्री युगल सरकारन की सखियां आरती उतार रही हैं कोई सखियां बिलास पूर्वक अर्थात् नाना प्रकार के हास्य बिलास युक्त रसमयी बचन बोल रही हैं ॥१५२-१५३॥

चौ०—कबहुँक निज २ कुंजन जाहीं ।

भिन्न २ स्नान कराहीं ॥ १५४ ॥

कबहुँक सिय कुंजन प्रभु आवैं ।

सिय परिकर स्नान करावैं ॥ १५५ ॥

अर्थ—इस प्रकार (उपरोक्तानुसार) श्रीयुगलसरकारों की प्रसन्नता हेतु सखियां अपने-अपने हास्य बिलास करती हुई अपनी २ सेवा में प्रस्तुत (तत्पर) रहती हैं कभी श्री युगल सरकारजी अलग २ अपनी २ स्नान कुंज में जा कर अपने २ परिकरों से स्नान कराते हैं ॥ १५४ ॥

और कभी श्री रघुनाथजी श्री सीताजी की स्नान कुंज में आते हैं और तहाँ श्री किशोरी के परिकर श्री युगल सरकारों का स्नान कराते हैं ॥१५५॥

चौ०—प्रथम बैठि सिंगार उतारैं ।

तहँ ते पुनि भीतर पगु धारैं ॥ १५६ ॥

जहँ स्नान कुंज शुभ सोहा ।

अगनित सुरभि सहित जल जोहा ॥ १५७ ॥

अर्थ—पूर्व कह चुके कि जब श्री रघुनाथजी सहित श्री सीताजी

के दोनों स्नान कुंजों के मध्य सुभासन पर ब्राज जाते हैं तब परिकरगन (सखियां) उनकी आरती उतार हास्य विलास युक्त बचनों से उनको प्रसन्न करती हुई श्री युगल सरकार का सिंगार उतारती हैं (जिनकी जो सेवा है वह करती हैं) जब सब शृंगार उतर चुकता है तब श्री युगल सरकार जो उस सुभासन से उठ कर (मध्य बठक से) भीतर पधारते हैं (स्नानागार में) ॥ १५६ ॥

(भीतर) जहां अति सुन्दर स्नान कुंज सुशोभित हो रहीं हैं जिनमें अनेकों प्रकार के परम सुगंधित जल विद्यमान हैं ॥ १५७ ॥

चौ०—अजिर सुमन पचरंग बिछाये ।

तेहि पग धरत कुंज ढिंग आये ॥ १५८ ॥

मणिन जड़ित सोपान सुहाई ।

जल की गली अनेक बनाई ॥ १५९ ॥

अर्थ—श्री स्वामीजी उपरोक्त छंद में केवल सुभासन से स्नान कुंज में पधारना कह आये हैं अतः अब यह बतलाते हैं कि किस प्रकार जवाई होती है—मध्य बठक से स्नान कुंज को जाने के आंगन (अजिर) का रास्ता में परम सुगंधित कोमल फूलों की पंचरंग भरी पखुरियां (या पत्तियां) बिछी हुई हैं तिन पर परम कोमल श्री चरणों को रखते हुये श्री युगल सरकारजी स्नान कुंड के निकट पहुँचे ॥ १५८ ॥

इस कुंड की मणि जड़ित सीढ़ियां परम सुशोभित हो रहीं हैं और इस कुंड में अनेकों सुगंधित जल की परम मनोहर रास्तायें हैं अर्थात् कलें (रास्ता वगैरह) लगी हुई हैं ॥ १५९ ॥

चौ०—चारहु दिशि कंचन की खभियाँ ।

चौकी मध्य जंजीरन थभियाँ ॥ १६० ॥

ऊपर सरयु मिलि भरना भरै ।

संख द्वार है प्रभु पर परै ॥१६१॥

अर्थ—श्री स्वामीजी यहां स्नान कुंज का सूक्ष्म रूप से वर्णन करते हैं पहले ही कह चुके हैं कि स्नान कुंज के चारों ओर भीतर तहखानों में अन गिनते तरह २ के सुगंधित जल बनाने के हौद बने हुये हैं और जो पहले दोनों दंपति कुंजों को कह आये हैं उसी का अब कुछ बिस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं—इस स्नान कुंज के चारों तरफ सोने के खंभाओं की अवली के मध्य एक चौकी है जिस पर ब्राज कर श्री युगल सरकार जी स्नान करते हैं इन खंभों में पुतलियां बनी हुई हैं जिनके दोनों हाथों में सुन्दर २ संख बने हैं चौकी से खंभों तक जंजीरें लगी हैं श्री युगल सरकारों के चौकी पर ब्राजने से ही यह पुतलियां उन जंजीरों द्वारा आकर चंदन चौकी के निकट आजाती हैं ॥ १६० ॥

ऊपर कह आये हैं कि “जल की गलीं अनेक बनाई” — गली यानी पेंच इन संख द्वार वाली पुतलियों में उन सुगंधित जल बनाने वाले कुंडों से पेंच लगे हैं सो स्नान कराते समय सखियां पेंचको तरह खोल देती हैं और श्री युगल सरकारन के ऊपर सुगंधित सरयूजल गिरने लगता है इस तरह से स्नान कुंज का वर्णन कर श्री स्वामीजी अवस्नान का क्रम वर्णन करते हैं ॥ १६१ ॥

॥ दोहो ॥

तेहि ढिग चंदन पीठि पर पिय प्यारी आसीन ।

भिन्न अंग प्रति सहचरिन्ह, सुरभि उपटनो कीन ॥१६२॥

अर्थ—उन पुतलियों के निकट चंदन चौकी पर श्री प्रिया प्रीतम जी ब्राज गये और तब भिन्न २ अंगों प्रति भिन्न २ सहचरियां परम सुगंधित ऋतानुकूल उपटनों को करने लगीं ॥ १६२ ॥

॥ दोहा ॥

बहु सुगंध जुत तैल पुनि, यथा काल रुचि जान ॥
मल मल गाय बिबिधि बिधि, नाम न जाहि बखान ॥ १६३

अर्थ—इसके बाद नाना प्रकार के सुगंधित मय तैल फुलेल, यथा कालानुकूल अनेकों प्रकार से मल २ कर बिबिधि भातों के गानाओं को गा २ कर (जिनके नाम बखाने (कहे) तक नहीं जा सकते) लगाने लगीं ॥ १६३ ॥

प्रथम अलग २ स्नान में भी कह आये अब यहां श्री किशोरीजी की कुंज में साथ २ दोनों सरकारों के स्नान कहते हैं ।

॥ दोहा ॥

मज्जन चौकी निकट करि, तेहि बैठे दोउ साथ ।
प्रथम उष्ण जल धार चलि, सहचरि बोड़े हाथ ॥ १६४ ॥

अर्थ—पहले उपटन, फिर तेल फुलेल इसके बाद खंभों की पुतलियां श्री सरकारों के चौकी पर बैठते ही जो निकट आकर संख द्वारा मुद्रा से चौकी के पास खड़ी हो गई थीं उन्हीं संख द्वारा से पेंच द्वारा सखियों ने दो गर्म जल धारायें चलाई और वह मधुर २ धारों में दोनों सरकारों पर पड़ने लगीं इन धारों के गिरने के पूर्व ही सहचरी अपने हाथों को जलधार से लगाये हुये हैं कि कहीं विशेष गर्म तो नहीं है (पहले गर्म जल से स्नान कराने का हेतु यही है कि उपटन, तैल वगैरह का अंश तक श्री अंगों पर न रहे) ॥ १६४ ॥

॥ दोहा ॥

पुनि तेहि ते कछु सीर जल, पुनि ताहूते सीर ।
यथा काल रुचि जानके, मीजत सखी शरीर ॥ १६५

अर्थ—इसके बाद उसी संख द्वार से दूसरे पेंच द्वारा प्रथम से कुछ ठंडी जल धार फिर उसमे भी ठंडी जल धार से स्नान कराती हुई ऋतानुकूल (गर्मी में ठंडी ठंडी में गर्म) इक्षानुकूल, यथा रुचि देख कर, गर्म, ठंडी, सुगंधित जल धारों को श्री अंगों पर डालती हुई सखियां सर्वांगों को मलती हैं ॥ १६५ ॥

चौ०—पुनि सुगंध सीतल जल आयो ।

तब प्रभु बिहँसि कुंड भरवायो ॥ १६६ ॥

नाभि प्रयंत प्रमाण जान जब ।

तजि चौकी मज्जन निजकर तब ॥ १६७ ॥

अर्थ—मल चुकने के बाद ठंडे सुगंधित जल की धारा को सखियों ने खोल कर चलाई तब श्री प्राण प्यारे ने मंद २ सुसकाते हुये स्नान कुंड भरने की आज्ञा दी और नाभि तक कुंड में जल आगया है ऐसा जान दोऊ प्राण प्यारे चौकी से उठ कर कुंड में स्नान करने लगे ॥ १६६-१६७ ॥

चौ०—हास विलास परस्पर करहीं ।

जल फूही कर बहु सुख भरहीं ॥ १६८ ॥

यहि विधि करि स्नान दुलारे ।

पुनि जल तजि बाहर पगु धारे ॥ १६९ ॥

अर्थ—और (उस कुंड में मज्जन करते हुये) नाना प्रकार की जल क्रीड़ाओं सहित हास विलासादि परस्पर करते हुये जलकी फूही एक दूसरे पर आनंद में मग्न हो २ अत्यंत सुख से भर २ डारते हैं ॥ १६८ ॥

इस प्रकार सुखानंद में श्री दोऊ प्राण प्यारे सहित परिकर स्नान कुंड में स्नान करके कुंड से निकल आते हैं ॥ १६९ ॥

चौ०—स्वेत बसन जीरन सुठि लीन्हों ।

पिय अंग तुरत अँगुउछा कोन्हों ॥ १७० ॥

पुनि सूखे पट पहिर प्यारे ।

कोउ सखि केश निचोर सँबारे ॥ १७१ ॥

अर्थ—ज्योंही श्री प्राण प्यारे स्नान कर कुंड से बाहर आते हैं त्योंही सखीगन जो सब सेवा में पूर्व ही तत्पर हुईं स्वच्छ अति दिव्य उज्ज्वल पुराने वस्त्रों को लिये हुये (पुराने कपड़ा जलको शीघ्र सोख लेता है इतः वहाँ पुराने कपड़े लिये हुई हैं) सरकारन के श्री अंगों को अगोछने (पोछने) को खड़ी हुई हैं सो दाउ प्राण प्यार के प्यारे अंगों को अगोछती हैं ॥ १७० ॥

इसके बाद जब श्री प्राण प्यारे सूखे वस्त्रों को धारण कर लेते हैं तब कोउ सखीगन उनके सुन्दर अनूतन केशों को निचोड़ कर अर्थात् स्वच्छ स्वापी से सुखा कर सवारंती हैं अर्थात् अलग २ करती हैं ॥ १७१ ॥

चौ०—अगर धूप दे चिकुर सुखावैं ।

कोउ सखि प्रिय हित तिलक करावैं ॥ १७२ ॥

कोउ आदरस दिखावत ठाढ़ी ।

लखि प्रतिविंब प्रेम रस बाढ़ी ॥ १७३ ॥

सकल अंग चंदन चर्चित कै ।

रुचि बांछित प्रभु पद अर्पित कै ॥ १७४ ॥

यज्ञोपवीत चारु सुठि सोहा ।

जेहि लखि इन्द्र धनुष मन मोहा ॥ १७५ ॥

अर्थ—कोई सखियां अगर धूप देकर सुगंधित धूस्र से केशों को सुखा रहीं हैं कोई उनको बड़े प्रेम से आनंद पूर्वक तिलक लगा रहीं हैं ॥ १७२ ॥

कोई सखियां बड़े २ सर्वांगी आदर्श (ऐना) को लिये हुये दिखा रहीं हैं और शीशों में उनकी परम सुन्दर मनोहर मूर्तियों को अवलोकन कर (प्रतिबिंब यानी छाया देख कर) प्रेम रस में डूब रहीं हैं ॥ १७३ ॥

कोई सखियां श्री सरकारी अंगों में परम सुगंधित ऋतानुकूल और रुचानुकूल चंदनादिक लेपन कर श्री युगल चरणारविन्दों में अर्पित कर लगा रहीं हैं ॥ १७४ ॥

श्री प्रीतमजी के श्री अंग में परम सुन्दर यज्ञोपवीत अत्यन्त शोभित हो रहा है जिसे देख कर इन्द्र धनुष मोह जाता है (लज्जित हो जाता है) (यज्ञोपवीत नित्त बदला जाता है) ॥ १७५ ॥

॥ दोहा ॥

अंग २ प्रति भूषणनि, सब सखि रचे बनाय ।

अंगद कौस्तुभ आदि दे, कहत न मोहि सिराय ॥ १७६ ॥

केशनिमुक्ता सुमननिलि, चूढ़ा बंधन कीन्ह ।

जरकसी चीरा स्वेत तब, प्रभु निज कर धरि लीन्ह ॥ १७७ ॥

अर्थ—इसके अनंतर सखियों ने श्री युगल सरकारों के श्री अंगों में अंगन २ प्रति यथा योग्य (जो जहां का भूषण है उसी अंग में पहिनाया जो श्री प्राणप्यारे का था सो उनको और जो श्री प्यारीजी का था सो उनको पहिनाया) अत्यन्त सुधार के यानी भली प्रकार रुचि २ कर अति सुन्दर शोभित अंगद कौस्तुभ सणि आदि देकर सर्व अंग के भूषणदिकों को सजोया अर्थात् पहनाये जिनकी (भूषणों की या भूषण युक्त अंगों की) शोभा कहते मेरी (श्री स्वामीजी) बुद्धि नहीं सिराती (संतोष को नहीं प्राप्त होती) अर्थात् अमित शोभा है ॥ १७६ ॥

(श्री किशोरीजी के) सखियों ने मुक्ताओं के साथ २ परम सुन्दर सुगंधित पुष्पों को मिला २ कर केशों की सुन्दर चोटी बड़ी चतुराई के साथ सुधार के बांधी है तिसके बाद ही श्री प्यारेजी ने स्वयं निजकर कमलों से जरकसी का स्वेत रंग का बँधा बँधाया स्वापा (पटका) अपने शिर में धारन करलिया ॥ १७७ ॥

चौ०—स्वेत उपरना काखा सोती ।

स्वेत वरन कटि शोभित धोती ॥ १७८ ॥

तेहि विधि सिय सूखे पट धारे ।

भूषण सुरभि सुकेश सुधारे ॥ १७९ ॥

सिय युत यज्ञशाल चलि आये ।

संग सखिन के युथ सुहाये ॥ १८० ॥

सुमन बोटिका बहुत पियारे ।

तुलसी पुष्प माल गल डारे ॥ १८१ ॥

अर्थ—स्वेत रंग का दुपट्टा (जो कंधों पर डलाहुआ अपने दोनों छोरों सहित लटकता रहता है यानी काखासोती) अपने दोनों छोरों (आगे पीछे) के साथ लटकता हुआ और स्वेत ही वरण की धोती कटि से चरणों तक अत्यंत शोभित हो रही है (शंका) यहाँ सेत धोती क्यों कहते हैं कि (समाधान) यहाँ जज्ञ करना है जज्ञ में सेत ही वस्त्र धारण किया जाता है ॥ १७८ ॥

श्री प्राण प्यारेजी की तरह ही श्री सियजू भूषण वस्त्र धारण किये हैं अर्थात् जिस प्रकार से सखियों ने श्री प्राण प्यारेजी के केशों आभूषणों वस्त्रों को सँवारा है उसी प्रकार से श्री सियजू ने सूखे वस्त्र पहिन सखियों द्वारा अंग २ प्रति वस्त्राभूषण युक्त सुगंधित फूलों के साथ

चोटी आदि बँधवो कर अपना शृंगार करवाया ॥ १७९ ॥

इस प्रकार स्वेत पोशाक धारण किये श्री युगल सरकारजी यज्ञशाला को चले जिनके साथ में अगनित सखियों के अगनित समूह शोभित हो रहे हैं ॥ १८० ॥

इस प्रकार दोनों सरकारजी फूलवाड़ी में (जो स्नान कुंज से यज्ञशाला तक नाना प्रकार की परम सुगंधित फूलवाटिकायें लग रही हैं) होकर सुन्दर कंठों में सुगंधित फूल मालायें और तुलसी मालायें पहने हुये सहित समाज के यज्ञशाला को चले ॥ १८१ ॥

चौ०—आये यज्ञ वेदि के तीरा ।

सौज लिये मुनिजन मति धीरा ॥ १८२ ॥

वेद मंत्र ब्राह्मण उच्चरहीं ।

सिय युत बैठि होम प्रभु करहीं ॥ १८३ ॥

जस विधि जहँ तहँ तस विधि कीन्हा ।

नित्य प्रमाण दान तब दीन्हा ॥ १८४ ॥

गो घृत भरि कोपर युग आये ।

दंपति छाँह देखि हर्षाये ॥ १८५ ॥

पुनि विप्रन प्रनाम प्रभु कीन्हा ।

चल शृंगार थलहिं चित दीन्हा ॥ १८६ ॥

श्वेत सुमन शृंगार ग्रह आये ।

तहँ कि सखिन शृंगार बनाये ॥ १८७ ॥

अथ—और यज्ञ वेदी के निकट जहाँ स्थिर मति वाले मननशील

मुनी जन यज्ञ कराने के लिये यज्ञ वस्तुयें एकत्रित किये तैयार हैं (श्री बशिष्ठजी के पुत्र सुयज्ञजी अपनी समाज लिये यज्ञशाला में उपस्थित हैं ये भीतर रतिवास में अंबादिकन के समीप आने जाने वाले हैं) श्री प्यारेजी सहित प्रियाजी के पहुँचे ॥ १८२ ॥

श्री सियाजी के सहित श्री राघवजी होम हवनादि करते हैं और ब्राह्मण समुदाय अर्थात् मति धीर मुनी जन वेद मंत्रों को उच्चारण कर रहे हैं ॥ १८३ ॥

इस प्रकार विधिपूर्वक हवन कर नित्य दान को जैसा प्रत्येक दिन देने का प्रमाण है उसी प्रकार हवनान्तर दान जिस प्रकार दिया जाता था सो श्री प्राण प्यारेनजी ने दान दिया ॥ १८४ ॥

इसके बाद सुन्दर दो कनक कोपों में स्वच्छ सिद्ध किया हुआ गौ घृत भर कर सखियां श्री युगल सरकार के सामने ले आईं श्री युगल सरकार ने अपनी २ छाया (प्रतिबिम्ब) घों में देखकर प्रसन्न हुये ॥ १८५ ॥

इसके बाद सब विप्र समाज को दोड़ सरकार प्रणाम कर यथा योग्य आशीर्वाद पाकर श्री शृंगार कुंज की ओर चलने का रुख किया अर्थात् चले ॥ १८६ ॥

सहित समाज के श्री युगल प्रिया प्रीतमजी स्वेत सुमन सिंगार भवन में आये और इस कुंज की सखियों ने श्री युगल सरकार का शृंगार किया (यज्ञ में स्वेत ही वस्त्र धारण करते हैं) अतः आगे पीताम्बर धारण करेंगे ॥ १८७ ॥

चौ०-बसन विभूषण यथा काल जस ।

रुचि अनुकूल सखिन कीन्हों तस ॥ १८८ ॥

बागो पहिर मुकुट धरि माथे ।

कटि पीताम्बर मुक्ता गांथे ॥ १८९ ॥

ॐ घृत में छाया को देखना अरिष्ट निवारक है ।

तेहि ऊपर बन माला पहिरी ।
 पचरँग मुक्तन की छवि गहरी ॥१६०॥
 अंगद पहुंची मुद्री धरी ।
 गज मुक्तन माला गर परी ॥१६१॥
 धनु धरि करि सायक प्रभु फेरत ।
 हंसि२ पूछि सिया मग हेरत ॥१६२॥
 सिया सिंगार सखिन कर वायो ।
 सो मोहि वरणत एक न आयो ॥१६३॥

अर्थ—उन्होंने श्री युगल सरकार को ऋतानुकूल, रुचानुकूल
 और समयानुकूल भूषण वसन (यानी अलंकार और कपड़े वगैरह)
 पहिराये अर्थात् सिंगार किया ॥ १८८ ॥

उसीको वर्णन करते हैं कि पहले श्री अंग में बागो पहिरा कर
 सुन्दर माथे पर मुकट लगाया कटि में परम प्रकाश मय पीताम्बर जिसके
 दोनों छोरों में मुक्ता लटक रहे हैं ॥ १८९ ॥

तिसपर गले से लेकर कटि प्रयंत पंच रंग मय मोतियों की गुच्छे
 दार बनी हुई बन माला सरकार को पहिराई (धारण कराई) पंच प्रकार
 के पुष्पों से बनी हुई मोटी कंठ से कटि तक होने वाली माला को बन
 माला कहते हैं) इस पंच रंग मोतियों से बनी बनमाला तथा पंच रंग
 मयी मुक्तन मणिन की बड़ी अनुपम शोभा हो रही है । १९० ॥

अब श्री स्वामीजी अलंकार कुछ सूक्ष्म रीति से मुख्यतः बतलाते
 हैं कि अंगद (जो भुजाओं में पहिने जाते हैं) भुजाओं में और अंगु-
 लियों में अंगूठियां और गले में गज मुक्तन की क्रम से छोटी बड़ी
 मालायें पड़ी हुई हैं ॥ १९१ ॥

बायें हाथ में धनुष और दाहिने में बाण घुमाते हुये (हिलाते हुये सहज स्वभाव से) बड़ी मधुर मुस्कान तथा हास के साथ हँस २ कर बार २ श्री रामजी महाराज सखियों से पूछते हैं कि श्री प्रियाजी का सिंगार हो गया है या नहीं और श्री सियाजी की राह देख रहे हैं ॥ १९२ ॥

श्री सियाजी का सिंगार जो सखियों ने किया है सो श्री नाभा स्वामीजी कहते हैं कि वह सिंगार एक भी मुझसे वर्णन करते नहीं बनता अथवा वह श्री सियाजी का सिंगार सम्पूर्ण तो कौन कह सकता है जिसके जरा भी वर्णन करने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है यदि मैं वर्णन करूँ पर जैसा वह सिंगार है वैसा कहना असंभव है (नहीं बनैगा) क्योंकि श्री किशोरीजी का शृंगार अकथनीय है जैसा गोस्वामीजी कहते हैं (सिय सिंगार किमि जाय बखानी । गिराअनयन नयन बिन बानी ॥) ॥ १९३ ॥

चौ०—नील कमल कर धरे जानकी ।

सखिन सहित ढिग सुख निधानकी ॥ १६४ ॥

लखि छवि कोउ त्रण तोरि चलावैं ।

कोउ चाँवर कोउ व्यजन दुरावैं ॥ १६५ ॥

सिय रुख लखि पकवान सलौने ।

आनि मधुर भरि धरे मिठौने ॥ १६६ ॥

मेवा सकल अनेकन भांती ।

बहु उपहार गनै को जाती ॥ १६७ ॥

सिय युत करि भोजन प्रभु जबहीं ।

लोन प्रसाद सहचरिन तबहीं ॥ १६८ ॥

लै बीरी मुख चर्बित प्यारे ।
सिय युत मध्य कुंज पगु धारे ॥१६६॥

आय सिंहासन बैठे दोऊ ।
आरती सजन लगीं सखि कोऊ ॥२००॥

सुमनन की रचना अति कीन्हीं ।
पुनि तुलसी युत अंजलि दोन्हीं ॥२०१॥

करि शृंगार आरती अनुरागीं ।
मधुर स्वरन ते गावन लागीं ॥२०२॥

॥ दोहा ॥

जाम एक गति लखि जबै, चढ़ि सुख पान सुहाय ।
अंतःपुर के द्वार ढिंग, तहँ कछु छिनक बिताय ॥२०३॥

अर्थ—श्री जानकीजी नीले कमल को सुन्दर कर कमलों में लिये
हुये अर्थात् धारण किये अपनी सखियों सहित श्री प्रीतमजी के निकट
शोभित हैं ॥ १९४ ॥

कोई सखियां युगल छवि पर व्रण तोरतीं हैं कि कहीं हमारे श्री
प्राण प्यारेन को दीठ न लग जाय अथवा सम्पूर्ण भुवनों को छवि को
(इस छवि का रसास्वादन कर) व्रणवत् समझती है कोई चावर, कोई
व्यजन श्री सरकारों को कर रही हैं ॥१९५॥

श्री प्रिया जी का कल लख सखियों ने सुन्दर नमकीन रस मय
तथा मीठे रस मय पकवान मणि जड़ित कंचन कटोरो में भरि २
कर श्री सरकारों के सामने रख दिये ॥ १९६ ॥

और अनेको प्रकार के सुन्दर मीठे रस युक्त अति स्वादिष्ट मेवाओं को भी मणि पात्रों में लगा कर और भी अनेकों भांति २ के मेवा मिष्ठान, पकवानादि सर्व रसमयो पात्रों में लगा २ कर श्री प्राण प्यारेन के सामने चौकियों पर रख दिये जो गिने नहीं जा सकते अर्थात् अनगिनित पदार्थ हैं ॥ १९७ ॥

जब श्री प्यारे जी ने सहित प्राण प्यारी के भोजन किये और तब सहचारियों ने यथा क्रमानुकूल श्री प्राण प्यारेन की प्रसादी ली ॥ १९८ ॥

इधर वीरी सेवा वाली सखियों ने श्री युगल सरकार को परम सुगन्धित सुन्दर वीरी समर्पित की और ताम्बूल वीरी को ग्रहण कर चर्वन करते हुये अर्थात् चाबते हुये मध्य कुंज व अंतः पुर के सर्व तोष भवन में पधारें ॥ १९९ ॥

और यहां पर एक सुन्दर मणि जड़ित कनक सिंहासन पर ब्राज गये यहां सखियां सिंगार आरती के लिये नाना प्रकार के पुष्पों की अति सुन्दर रचना करने लगी पश्चात् सिंगार आरती की ॥ २०० ॥

विधि पूर्वक आरती करने के बाद अपनी २ अंजलियों में तुलसी दलों फूलों को लेकर श्री युगल सरकार पर बर्षाने लगे ॥ २०१ ॥

इस प्रकार आरती पुष्पांजलि कर आनंद पूर्वक अनुराग भरी मधुर स्वरों में विनय पूर्वक स्तुति करती हुई निज कार्पण्यता और श्री युगल सरकारों की करुणा अहेतु की कृपा विषयक गीत गाने लगीं ॥ २०२ ॥

जब एक याम व्यतीत हो गया तब श्री युगल सरकार जी सुख पाल पर चढ़ परम शोभित होते हुये अंतः पुर के द्वार के बाहरी आवरण में कुछ थोड़ी देर ठहर गये यहां पर प्रथम सेही आरती करने वाली सखियों ने सिंहासन लगा रखा है उसी पर ब्राज श्री युगल सरकार थोड़ा समय व्यतीत किये अर्थात् थोड़ी देर बिताई ॥ २०३ ॥

चौ०-तहं जो बसत सखी समुदाई ।

तेउ सिंगार आरती ले धाई ॥ २०४ ॥

निज २ रुचि आरतीं उतारै ।

बहु मणि गण निवछावरि वारें ॥ २०५ ॥

पुनि अंतः पुर पहुंचे आई ।

निज २ साज आरती ल्याई ॥ २०६ ॥

॥ दोहा ॥

कुंज २ प्रति सहचरी ॐ आवत नावत माथ ।

सनमानत मृदु बचन कहि लखि छवि होत सनाथ ॥ २०७ ॥

अर्थ—अंतःपुर के बाहरी आवरण में निवास करने वाली सखियों के मुंड के मुंड (सखी समूह) अपनी २ आरतियों को सजा २ कर ल्याई ॥ २०४ ॥

अंतःपुर के सभा कुंज में श्री युगल सरकार ब्राजमान हैं (अंतःपुर की सखी) सब अपनी २ इक्षानुकूल अनुराग के साथ आरती उतारती हैं और आरती विधि पूर्वक कर २ श्री युगल सरकार पर अनेकों मणिगण निछावरि करि २ वारी जाती हैं बलैयां लेती हैं ॥ २०५ ॥

पुनः अंतःपुर की सभा कुंज में सरकार पधारें और अंतःपुर की सखी सब अपनी २ आरतीं सुन्दर साज २ कर ल्याई ॥ २०६ ॥

अतः कुंजन २ से सहचरीगन आरती कर विधि पूर्वक मत्था

ॐजितनी सखी श्री कनक भवन में हैं सब एकत्र यहां होती हैं सब माथा नवाती हैं आप भी सनमानते हैं ।

(अब यहां से सरकार भोजन साल पधारेंगे सब साथमें जायगी ।)

नवाती हुई प्रणाम करती हैं और श्री युगल सरकार भी उनसे मृदुल कोमल मीठे बचन कह २ कर आदर पूर्वक समीप बैठने की आज्ञा दे बैठालते हैं और सखियां भी आपकी अनुपम मनोहर छवि का रसा-स्वादन करती हुई सनाथ अथवा कृतार्थ हो रही हैं ॥ २०७ ॥

चौ०—तहँ कछु समय बिलास हास करि ।

रंग २ सत रंज सु चौपरि ॥ २०८ ॥

असन साल की सखी सुहाई ।

करि समाज सब प्रभु ढिंग आई ॥ २०९ ॥

पहर सवाउ लाल दिन आयो ।

द्विज पतिन की विनय सुनायो ॥ २१० ॥

सो सुनि सिय पासा धरि दीन्ही ।

भोजन मंदिर दिशि रुख कीन्ही ॥ २११ ॥

सिय युत चढ़ि सुख यान सुहाये ।

सहित सखिन भोजन ग्रह आयो ॥ २१२ ॥

प्रथम बैठि प्रभु बस्तर काढ़े ।

सुमन सिंगार पहिर सुख बाढ़े ॥ २१३ ॥

यथा काल रुचि सुमन सुहाये ।

अंग २ रुचि सखिन बनाये ॥ २१४ ॥

सुमन पाग सुमनन को जामा ।

और सबै सुमननि की सामा ॥ २१५ ॥

अर्थ—तहां सभा कुंज में कुछ समय तक नाना प्रकार के हास खिलासादि करते हुये श्री युगल सरकार रंगर के नाना प्रकार के खेल सतरंज चौपड़ इत्यादि खेलने लगते हैं ॥ २०८ ॥

इतने में ही भोजन शाला की सुन्दर सुहावते बसनादि पहिरे, सखियां पहले भोजन सामग्री को भोजन भवन में यथा योग्य सब सेवा सौज सजा ठीक कर भोजन भवन में श्री युगल सरकारजी के पधारने की विनय करने के लिये आईं ॥ २०९ ॥

और उन सखियों ने (जो भोजन के लिये बुलावा रूप पधारी हैं) आकर बड़े धर्य पूर्वक विनय की कि हे श्री लडती लालजी सरकार सवा पहरदिन चढ़ आया है वहां भोजन शाला में ब्राह्मण पत्नियां जो रसोइन (रसोई करने वाली) वो आपको राह जोह रहीं हैं आपसे भोजन करने की प्रार्थना की है ॥ २१० ॥

इस प्रकार जब सखियों ने प्रार्थना की परन्तु श्री सरकारजी श्री प्रियाजी के साथ चौपड़ खेलने में इतने तन्मय हो रहे हैं कि उन्होंने खेल के आवेश में न सुन कर खेल ही में लगे रहे पर श्री प्रियाजी ने ऐसा देख सखियों की प्रार्थना सुन खेलको छोड़ (चौपड़ को) समेट लिया और श्री भोजन शाला का रुख कर सरकार को भोजन भवन पधारने का संकेत कर जनाया कि अब भोजन समय हुआ देखो सखियां विनय कर रहीं हैं कि वहां द्विज पत्नियां राह देख रहीं हैं भोजन सामग्री लग चुकी है अतः अब वहां चलना चाहिये ॥ २११ ॥

इस प्रकार श्री प्रियाजी का रुख पाकर श्री प्यारेजी सहित परिकरों के सुन्दर सुख यान (सुखपाल पीनस) पर श्री प्यारीजी सहित परम शोभित होते हुये भोजन शाला में पधारे ॥ २१२ ॥

पहले भोजन शाला के बैठका में श्री युगल सरकार ब्राज गये यहां प्रथम का सिंगार (बख) उतार कर सखियों ने फूलों का सिंगार

दोनों सरकारों को धारण कराया जिसको धारण कर श्री प्रिया प्रीतमजी ने परम सुख पाया ॥ २१३ ॥

यथा कालानुकूल, रुचानुकूल सर्वांगी सुन्दर पुष्प सिंगार जो सखियों ने अंग २ प्रति अति चतुराई से बना कर पहिराया है परम सुशोभित हो रहा है ॥ २१४ ॥

सुन्दर फूलों की पाग शीश पर शोभित है सुन्दर श्री अंग में फूलों का जामा (कुरता) शोभित है और सर्व अंगन में जहां जैसा चाहिये तहां तैसा फूलों का ही सिंगार धारण किये हैं अर्थात् दोऊ सरकारों के अंगों में सब सिंगार फूलों ॐ के ही (भूषण बसन) शोभित हैं ॥ २१५ ॥

॥ दोहा ॥

चरण पादुका सुमन युत, चढ़ि दीन्हें गलबांह ।
पंगत साल अनूप जहँ, चले जानकी नांह ॥ २१६ ॥
चंदन सिंहासन सुभग बहु, मणियन जरित जराय ।
सिय सियवर आसीन तेहि, दीन्हें सखिन रजाय ॥ २१७ ॥
निज पीढ़नि सहचरीं, भई सकल आसीन ।
सो अवसर लखि ऋषि बधुन, आनि थार धरि दीन ॥ २१८ ॥
कंचन थार अनूप अति, ओदन मध्य सुवास ।
व्यंजन चारि प्रकार के, परसे सहित हुलास ॥ २१९ ॥

ॐ ठंड काला में रसम के फूल रहते हैं इसी प्रकार अतानुकूल पटरंग फूल के वस्त्र भूषण रहते हैं और जिस फूल के रूप में बने रहते हैं उसी फूल के अंतर में वो सर रहते हैं रंग वही रहता है सुगंध वही रहती है ।

अर्थ—श्री युगल सरकारजी परस्पर गलबहियां दिये फूलों से सजी हुई परम सुशोभित फूलों की रचना की हुई खड़ाऊ पहने (धारण किये हुये) जहां सब सखियों सहित श्री सरकारजी पंगत करते हैं—पंगत शाला को चले ॥ २१६ ॥

इस परम रमणीय पंगत शाला में पहुँच कर श्री सरकारजी श्री प्रियाजी के साथ अति सुन्दर मणि जटित चंदन की चौकी पर विराज मान हुये और सब यूथेश्वरीन सहित सखियों को निज २ (अपने २) पीढ़ों पर बैठने की आज्ञा दी ॥ २१७ ॥

और श्री सरकारजी की ऐसी आज्ञा पाकर समस्त सहचरी अपने नियत स्थानों पर (पीढ़न पर) बैठ सुशोभित हुई ऐसा देख कर कि श्री युगल सरकारजी सहित परिकरों के पंगत शाला में विराज सुशोभित हो रहे हैं और अब थार परोसने का अच्छा सुअवसर है) कि इस सुअवसर को देख ऋषि पत्नियों ने श्री युगल सरकार के सन्मुख थार रख दिये ॥ २१८ ॥

यह स्वर्ण मय अति उत्तम अनोखे दिव्य थार हैं जिनके बीच अति बारीक सुगंधित चावलों का भात और चारों प्रकार के व्यंजन (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य) भक्ष्य जैसे बुंदियां इत्यादि जो चाबने में आवे, भोज्य जैसे पूरी मिठाई दाल भात इत्यादि लेह्य, मौहनभोग इत्यादि चोष्य जो चूसने अर्थात् चोह के खाने में आवे अतः ये पाचों प्रकार के व्यंजन) परम हुलास के साथ आनंद पूर्वक परसे गये हैं ॥ २१९ ॥

चौ०—सुरभि सर्पि भरि धरि ढिंग बेला ।

तेहि ढिंग तरकारिन की रेला ॥ २२० ॥

भाजी विविधि सुवास सुहाई ।

दूध दही बहु जिनस मिठाई ॥ २२१ ॥

तेहि ढिंग बिबिधि भांति बहु धरीं ।

पाकादिक बहु मेवा भरीं ॥२२२॥

छप्पन की संख्या को कहे ।

मोहि सो गनत पार नहिं लहे ॥२२३॥

यहि बिधि थार सुधारि हाथ करि ।

ले चलि प्रीतम प्रिया रंग भरि ॥२२४॥

चौ०—कोउ तिय पट चांवर तेहि करें ।

हित सों ल्याय लाल ढिंग धरें ॥२२५॥

सरयू जल सुगंध सों भीनों ।

भारी भरि प्रभु ढिंग धरि दीनों ॥२२६॥

रतन जरित जल सोभा धरे ।

जे नित प्रभु मुख के रस भरे ॥२२७॥

अर्थ—तिस थार में सुन्दर गौ घृत बनाया (सिद्ध किया) कंचन कटोरे में भरा हुआ रक्खा है जिसके समीप अनेकों प्रकार की तरकारियां सुन्दर २ पात्रों में भरी हुई रक्खी हैं ॥२२०॥

नाना प्रकार की भाजियां (पत्तियों का साग) जिसकी सुगंधि की लपटे उड़ रही है अर्थात् परम सुगंधित तरह २ की भाजी अनेकों प्रकार के बने हुये दूध दही तथा उन से बनी हुई मिठाइयों की बहुत भातों की जिन्स सुन्दर थारों में लगी हुई रक्खी है ॥२२१॥

इन जिन्सों के पास अनेकों प्रकार के बहुत पाकादिक गुभियां इत्यादिक नाना प्रकार की मेवाओं से भरी हुई रक्खी गई हैं ॥२२२॥

श्री नानाभा स्वामी जी कहते हैं कि उन व्यंजन भोगों की संख्या कोन कह सकता है उन व्यंजनों की गणना करने में मेरी मति असमर्थ है अतः जिस प्रकार कहि आये हैं अभित प्रकार के व्यंजनों की अभित संख्या है ॥२२३॥

इस प्रकार थार को समझार (सजा) कर सुन्दर हाथों में लेकर श्री प्रिया प्रीतम जी के रंग में भरी हुई अनुलाग पूर्वक सखी गन भोजन शाला से पंगति शाला का चली ॥२२४॥

कोई सखियां कपड़े का सुन्दर स्थच्छ चंदर उन थारों पर करती हुई चली और बड़े प्रेम पूर्वक श्री प्रिया प्रीतम जी के समीप पहुँच कर उनके सन्मुख थारों को रख दिया ॥२२५॥

कोई सखियों ने सुन्दर सुगंधित सरयू जल से भरी झारियों को भी सरकारों के समीप रख दिया ॥२२६॥

और कोई सखियों ने अति सुगंधित जल गिलासों में भर कर (जो नित्य श्री युगल सरकार के अधरामृत पान करने वाले हैं अर्थात् अधरामृत रस से भरे हुये हैं) रख दिया ॥२२७॥

यहां की सब सौज समाज सब दिव्य परिकरमय हैं ।

चौ०—प्रभु रुख लखि सखियन के आगे ।

भिन्न २ जल सहित सुभागे ॥२२८॥

यहि विधि सकल थार समहराये ।

जो लखि विधि आश्चर्य भुलाये ॥२२९॥

पय मिश्रित जल भारी आई ।

कर प्रक्षाल सबके कर वाई ॥२३०॥

प्रभु सिय युत कर प्रक्षालन कीना ।
 तब तिन्ह धूप भाव रस लीना ॥२३१॥
 व्यजन पट चँवर करत मंजरी ।
 प्रेमभरीं चारहु दिशि खरी ॥२३२॥
 प्रथम मधुर रस पंच आस करि ।
 भोजन करन लगे आनँद भरि ॥२३३॥
 सिय निज कर प्रभु मुख में देहीं ।
 मंदस्मित कर लालन लेहीं ॥२३४॥
 पुनि प्रभु सिय मुख आस देत हैंसि ।
 क्रीडा युत ले होत प्रेम बसि ॥२३५॥

अर्थ—श्री प्राण प्यारेन का रुख देख कर द्विज पत्नियों ने यूथे-
 श्वरीं सखिगनों के सामने सकल प्रकार के भिन्न २ सुन्दर थार, जल
 भरी झारियां, मणि जटित गिलास परम सुगंधित जल से भरे हुये
 रख दिये ॥ २२८ ॥

इस प्रकार श्री युगल प्रिया प्रीतमजी के सहित सब परिकरों के
 थार सवराये गये अर्थात् परोस कर रखे गये जिसको देख कर श्री
 ब्रह्माजी भी आश्चर्य में हो गये क्योंकि (विधिहिं भयो आश्चर्य बिसेखी ।
 निज करनी कछु कतहुँ न देखी ॥) ॥ २२९ ॥

इसके पश्चात् सखियां दूध मिला जल (जिसमें जल बहुत दूध
 बहुत कम) झारियों में भर कर ले आईं और उस जल से सब के कर
 कमल अर्थात् हस्त कमल धुलवाये ॥ २३० ॥

श्री प्रीतम प्यारेजी ने श्री प्रियाजी के सहित हस्त कमल प्रक्षालन

क्रिया तब तिन सखियों ने परम सुगंध युक्त धूप कर भाव रस ग्रहण किया ॥ २३१ ॥

श्री युगल सरकारजी सुभगासीन हैं चारों ओर मंजरीं खड़ी हुई सेवा में तत्पर कोई पटका व्यंजन कोई सुन्दर वस्त्र का चँवर बड़े आनंद पूर्वक कर रही हैं और सेवा दशानंद प्रेम में भरी हुई हैं ॥ २३२ ॥

सर्वा प्रथम श्री युगल सरकारजी ने मधुर रसके अर्थात् मिष्ट पदार्थ मय पंच ग्रास पंच कवल ॐ किये पुनः श्री दोनों प्राण प्यारे सरकार आनंद में भर कर आनंद के साथ भोजन करने लगे ॥ २३३ ॥

कभी श्री प्रियाजी अपने कर कमल में सुन्दर अनेक रस मय कवर श्री प्रीतमजी के श्री मुख कमल में देती हैं तैसे ही परम प्रिय ग्रास को श्री प्रीतमजी मन्द २ मुसकाते हुये श्री मुख कमल में ले लेते हैं ॥ २३४ ॥

पुनः श्री प्रीतमजी श्री प्रियाजी के श्री मुख कमल में निज कर कमल से सकल रस मय ग्रास हँस कर देते हैं परम प्रसन्नता पूर्वक मंद २ मुसकाती हुई श्री प्रियाजी तिस परम प्रिय ग्रास को क्रीड़ा पूर्वक (लीला के साथ) ले लेती हैं और परम प्रेम के बस हो जाती हैं (प्यारे के प्रेमबस हो रहती हैं) ॥ २३५ ॥

चौ०—जेहि व्यंजन पर सिय कर देहीं ।

सो प्रीतम पहिलेहि धर लेहीं ॥ २३६ ॥

लै कर ग्रास सिया मुख माहीं ।

देत लेत सुधि लुधा की नाहीं ॥ २३७ ॥

प्रीत परस्पर अघटित दोऊ ।
 सखि सुख निरखि लखत मुख कोऊ ॥२३८॥
 नैन सैन कर आपुस माँहीं ।
 एक २ तें लख मुसकाँहीं ॥२३९॥
 युगल रूप रति सरस सनेही ।
 भोजन की सुधि रहत न केही ॥२४०॥
 कहुँ जल सोभा सिय कर लेहीं ।
 लालन मुख पंकज में देहीं ॥२४१॥
 कहि न जाय छवि औसर तेहीं ।
 अलि गन सो सुख अनुभव लेहीं ॥२४२॥

अर्थ—जिस व्यंजन पर श्री सिया जू का हस्त कमल पहुँचता है उसको श्री प्रीतम जी पहले ही लेकर ग्रास कर श्री प्रिया जी के मुख कमल में दे देते हैं ॥२३६॥

और जिस व्यंजन पर श्री प्रीतम जी का हस्त कमल जाता है तिसको श्री प्रिया जी पहिले से ही श्री प्रीतमजी के श्री मुख कमल में दे देती हैं इस प्रकार परस्पर श्री प्रिया प्रीतम जी ग्रासों को लेते देते हैं छुधा है या नहीं त्रिप्ती हुई या नहीं (परस्पर परम प्रेम मई ग्रासों से दोनों सरकारन को त्रिप्ती हो ही कैसे सकती है) इसकी कुछ खबर ही नहीं है ॥२३७॥

श्री दोनों सरकारन की परस्पर अघटित (सदैव एक रस गहने वाली कभी भी कम न होने वाली) प्रीति है अथवा अपार प्रेम है इस प्रकार परस्पर श्री युगल सरकार जी पाय पवाय रहे हैं इस अपूर्व सुख

का दर्शन करती हुई कोई सखी गन परस्पर प्रेमावेशी मुखाम्बुजों को
और देख रही है ॥२३८॥

सब सखियाँ आपुस में नेत्रों की सैनों द्वारा संकेतिक चतराय
रही है (कि देखो दोष सरकारम की कैसी अनूठी अपूर्व आनन्द की
झटा है) और मुसका रही हैं (क्योंकि बोलने से प्रेम रस में रस भंग का
भय है) ॥२३९॥

समस्त सखीगन कोई श्री युगल सरकारों की परस्पर रूप माधुरी
को और कोई युगल रतिकी (युगल परस्पर प्रीति को) कोई परस्पर के
हाव भाव रसों को कोई परस्पर के स्नेहों की और दत्त चित्त हो आपा
(अपनपौ भूल अवलोकन कर रही हैं किसी को भी भोजन की सुधि
नहीं है ॥२४०॥

कभी जल के गिलास को श्री प्रियाजी अपने कर कमल में लेकर
श्री प्रीतमजी के श्री मुख कमल में देती हैं ॥ २४१ ॥

इस अवसर की छवि इस अवसर का सुख अथवा यह अवसर
का आनन्द कहानहीं जाता सब अकथनीय ही है हृदय ही अनुभव करता
है इस सुख का अनुभव सखियाँ ही जो सदा निकट रहती हैं प्राप्त
करती हैं ॥ २४२ ॥

चौ०—पुनि सोइ लै प्रभु सिय मुख लावैं ।

हित सों पियहि सुपान करावैं ॥ २४३ ॥

जब प्रभु धरें सिया तेहि टारैं ।

प्रभु सोइ लै निज बदन सुधारैं ॥ २४४ ॥

तब सिय और नबीन उठावैं ।

लाल तौन ले सिय मुख प्यावैं ॥ २४५ ॥

॥ वीहा ॥

लोनादिक उपनेत करि, मधुर पाक प्रभु लीन्ह ।
जनक नंदिनी बदन में, छल बल कर धरि दीन्ह ॥ २४६ ॥

चौ०—तब सिय पाक घास कर लीन्हा ।
पिय मुख भरि प्रसन्न हँसि दीन्हा ॥ २४७ ॥

प्रथम कटोरा सीय उठायो ।
दे मुख घास लाल बिरमायो ॥ २४८ ॥

पुनि जल पात्र लाल मुख लायो ।
पियहु लाल कहि मो मन भायो ॥ २४९ ॥

प्रभु कहँ हम ऐसी नहिं मानै ।
हम तुमरे छल बल सब जानै ॥ २५० ॥

अर्थ—पुनः इसी प्रकार श्री प्रीतमजी जल के गिलास को श्री प्रियाजी के मुख कमल में लगाते हैं और हित पूर्वक प्रियाजी को जल पान कराने लगते हैं ॥ २४३ ॥

जब श्री प्रीतमजी श्री प्रियाजी के श्री मुख से गिलास लगाने लगते हैं तभी श्री प्रियाजी गिलास को हाथ सेटार देती हैं सो श्री प्रीतमजी स्वयं वह ढाला हुआ जल पीने लगते हैं ॥ २४४ ॥

तब श्री प्रियाजी और नवीन परम मधुर सुगन्धित जल का गिलास उठाती हैं तब श्री प्रीतमजी उस जल को श्री प्रियाजी को पिवाने लग जाते हैं ॥ २४५ ॥

इस प्रकार जब तमकीन व्यंजनों से उपराम हुये (छोड़ कर, पा

चुकने के बाद) तो मीठे रस मय व्यंजनों का ग्रास हाथ में ले (श्री प्रीतम जी ने) प्रियाजी के श्री मुख कमल में छल रूपी बल कर दे दिया ॥ २४६ ॥

तब फिर श्री प्रियाजी ने हँस कर प्रसन्नता पूर्वक मुख भर पाक व्यंजन का मीठा ग्रास कर कमल में लेकर श्री प्रीतमजी के मुख कमल में दे दिया ॥ २४७ ॥

श्री प्रियाजी ने श्री प्रीतमजी के पिलाने के लिये प्रथम दूध का कटोरा उठाया कि श्री प्रीतमजी ने उनके श्री मुख कमल में ग्रास देकर बिलमा लिया अर्थात् दूध पिलाने से रोक लिया । २४८ ॥

पुनः श्री प्रियाजी ने मुख कमल में जलपात्र लगा कर प्रेम भरे शब्दों में कहा कि हे लालजी इस जलको पीजिये ये मनभायो है अर्थात् ये मेरे मन को भाता है कि आप इसे पियें ॥ २४९ ॥

श्री प्रीतमजी कहते हैं कि हे प्रियाजी हम ऐसे नहीं मानते हम तुम्हारे सब छल बल जानते हैं ॥ २५० ॥

चौ०—और छीर औदन मिश्री युत ।

करि प्रभु सिय मुख रुख ले अमृत ॥ २५१ ॥

लेकर ग्रास सिया मुख माहीं ।

भरि दीन्हों कर टारत नाही ॥ २५२ ॥

बार बार दे ग्रास सुहाये ।

पुनि सरयू जल पान कराये ॥ २५३ ॥

बहुरि पछावरि हितसों लेकर ।

सूक्ष्म ग्रास देहि मुख में धरि ॥ २५४ ॥

लाल चहें निज कर कछु पावें ।
तब सिय निज कर शीघ्र चलावें ॥ २५५ ॥
गूढ़ प्रेम लखि प्रभु मुसकाँहीं ।
प्रेम चुधा कहि सकत न नाँहीं ॥ २५६ ॥

॥ दोहा ॥

प्रभु रुख लखि आचमन को पात्र सखिन धरदीन ।
करत आचमन प्रिया युत दृष्टि सखिन तन कीन ॥ २५७ ॥

अर्थ—उपरोक्तानुसार कहते हुये श्री प्रीतमजी ने सुन्दर सुगंध युक्त मिथी पड़ा हुआ दूध भात का कौर बड़ी शीघ्रता तथा अद्भुतता के साथ श्री प्रियाजी के मुख कमल में देकर हास्य का रुख कर अपने कर कमल को श्री प्रियाजी के मुख कमल पर से नहीं टालते हैं (नहीं हटाते हैं) ॥ २५१-२५२ ॥

पुनः परस्पर सुन्दर ग्रासों को लेते देते सुन्दर सुगन्धित सरयू जल एक एक को पान कराने लगे ॥ २५३ ॥

अब भोजन तो हो ही चुका है पीछे पछावरि का जो भोजन होता है अर्थात् तक्र चटनी आदि प्रेम पूर्वक लेकर परस्पर श्री युगल सरकार मुख कमलों में धर देते हैं ॥ २५४ ॥

श्री प्रीतमजी चाहते हैं कि पछावरि स्वयं अपने हाथों से ही पावें तब श्री प्रियाजू श्री प्रीतमजी की इच्छा जान निज कर कमल से प्यारे के उठाने के पहले ही उनके मुख कमल में शीघ्रता से रख देती हैं ॥ २५५ ॥

इस प्रकार श्री प्रिया जी का गूढ़ प्रेम देख कर श्री प्रीतमजी प्रसन्न हो मंद २ मुसकाने लगते हैं दोनों प्राण प्यारे परस्पर प्रेम चुधा

बंत हैं और भूख नहीं हैं परन्तु दोनों प्रेमी प्रेम मय प्राप्त का अभाव
कर नहीं नहीं कर सकते अतः इस प्रकार बड़े आनन्द पूर्वक भोजन
भया ॥२५६॥

पश्चात् श्री प्रीतम जी का आचमन का रुख देख सखियों ने
आचमन के लिये दोउ सरकारन के सामने आचमन पात्र रख दिये
सहित प्रिया जी के आचमन करते समय श्री प्रिया प्रीतम जी की
(दाउन सरकारन को यूथेश्वरीन की ओर दृष्टि गई (अभी तक दोनों
प्रभुन के भोजनानन्द विलासों को समस्त यूथेश्वरी अवलोकन कर रही है
किसी को पाने की सुविधा नहीं है ऐसा देख कर) ॥२५७॥

॥ दोहा ॥

हँसि कह लाल सुनाइ के अवला कंठ सकेत ।
भोजन को अति सै सिथिल-हास विलास सचेत ॥२५८॥

चौ०—लाल कहहिं हम कर नहिं धोवैं ।

तुम सबको भोजन मग जोवैं ॥२५९॥

छिनक विलंब कीन प्रभु जबहीं ।

हित लखि तुरत तृपित भई तबहीं ॥२६०॥

सब मिलि कहैं लाल कर धोइये ।

हम बैठीं दंपति मुख जोइये ॥२६१॥

सहित सखिन प्रभु आचमन कीनो ।

धार शेष लघु चेदिन दीनो ॥२६२॥

अर्थ—श्री प्रीतम जी हँस कर सखियों को सुना कर कहने लगे
कि अवलाओं का कंठ संकीर्ण (छोटा) होता है वे गरम भोजन करने

में अति धीरी होती हैं पर हास विलासादि करने में दड़ी सचेत और सावधान होती हैं ॥२५८॥

अतः यह देख कर कि यह सब हमारे आनन्द में लकी हुई भोजन की ओर इन्होंने दृष्टि तक नहीं की है) उपरोक्तानुसार कह कर कहने लगे कि हम अब आचमन नहीं करेंगे जब तक कि हे सखियों तुम भोजन न कर लोगी हम दोनों तुम्हारे भोजन कर चुकने की राह देखते हैं ॥२५९॥

ऐसा कह कर श्री युगल सरकार अपने आश्रयावलंबी सखियों के लिये थोड़ी देर ठहर गये-ऐसा श्री सरकारन का अपने पर अति प्रेम देख सखीगन तुरंत त्रिप्त हो गईं ॥२६०॥

और कहने लगीं कि हे सरकार अब आप कर धोइये जिससे हम सब आपके कर धोने अथवा आचमन करने की भांकी को बैठ कर देखें या आप दोउन के मुखाम्बुजों का दर्शन करें ॥२६१॥

इस प्रकार सब परिकरों के साथ श्री युगल सरकारने आचमन किया और शेष प्रसादी लघु चेरियों को प्राप्त होती भई अर्थात् मिली ॥ २६२ ॥

चौ०-रस मंजरी कर बीरी बनाई ।

प्रिया प्रीतमहिं देत सुहाई ॥२६३॥

लें बीरी प्रभु सिय मुख मेलें ।

सिय प्रिय मुख सुख सखियां भेलें ॥२६४॥

हँसि २ करत रसीली बतियां ।

सो सुख सहचरि राखत छतियां ॥२६५॥

आठ मंजरी प्रभु की प्यारी ।
 जे छिन कबहुं होत नहिं न्यारी ॥२६६॥
 षोडस अर्ध वही कम रहैं ।
 दंपति अंतर ग्रह सुख लहैं ॥२६७॥
 तिन प्रभु भुक्त शेष जब पायो ।
 अति आदर सिर नैननि लायो ॥२६८॥
 तिनकी लघु चेरी इक अहै ।
 रस मंजरी चरण ढिग रहै ॥२६९॥
 जथा काल बहु रूप बनावै ।
 जो जस लायक तहँ पहुँचावै ॥२७०॥
 निज प्रसाद करि सब तेहि देहीं ।
 अति अनुराग शोश धरि लेहीं ॥२७१॥
 ले प्रसाद बहु रूप बनावैं ।
 थार चौक मज्जन करवावैं ॥२७२॥

अर्थ—ग्रन्थकार श्री नाभा स्वामीजी अपनी भावना कहते हुये अपने भावका नाम कहते हैं कि यह रस मंजरी सुन्दर नाना प्रकार के सुगंधित मसाले युक्त परम सुन्दर पान बीरियां अपने हाथों से बना कर श्री युगल सरकारन के सन्मुख लेजाकर देती हुई शोभित हुई उन बीरियों को लेकर श्री प्रिया प्रीतमजी परस्पर श्री मुख कमलों में देते हैं इस सुखका सखियां बड़े आनंद पूर्वक अनुभव कर रही हैं ॥ २६३-२६४ ॥

श्री युगल सरकारजी मंद २ हँसते मुसकराते हुये परम सुन्दर रस भरी (रसीली) बतियां करते हैं इस सुखानंद को सखियां अपने हृदय में ही रखती हैं ॥ २६५ ॥

परम प्यारी आठ मंजरीं जो कभी भी आपसे न्यारी नहीं होती सदैव साथ में ही रहती हैं ॥ २६६ ॥

वही खोड़स अर्घ (अष्ट युथेश्वरी जो मुख्य हैं वही मंजरी सात ७ वर्ष की अवस्था स्वरूप हो कर श्री प्रिया प्रीतम जी के अंतरंग त्रिकुंज सुख अर्थात् अंतः पुर के परम एकान्तिक दिव्य सुख को प्राप्त करती हैं नित्य श्री युगल चरण ढिग रहती हैं ॥ २६७ ॥

इन अष्ट मंजरी गनों ने श्री प्रसादी अर्थात् श्री युगल सरकारन का बचा हुआ शेष पाया और बड़े आदर से निज २ शीश में लगाय नेत्रों से लगाया ॥ २६८ ॥

इन अष्ट मंजरी जनो की एक लघु चेरी ये भी है जिसका कि नाम (रसमय) रस मंजरी है (श्री स्वामी नाभाजी अपने निज स्वरूप का नाम परिचय कराते हुये काम भी अपना बतलाती हैं) किये रसमंजरी सदैव इन समस्त मंजरी जनो के चरणों के निकट ही रहती है ॥ २६९ ॥

(और इस रस मंजरी जी का काम) जब जैसा जहाँ जिस समय जो काम पड़ता है तहाँ तैसा तिस समयानुकूल रूप बना कर जो जिस लायक हैं उसको उसके अनुसार प्रसाद पहुँचा देती है ॥ २७० ॥

और तब सब परिकरगन अष्ट युथेश्वरी प्रसाद को पाकर अपना २ प्रसाद कर के तिस रस मंजरी को अष्ट युथेश्वरी जी सब वात्सल्य पूर्वक अपना प्रसाद देती हैं तब श्री रस मंजरी जी अति अनुराग पूर्वक शीश से लगा परम प्रेम से ले प्रसाद को ग्रहण करती हैं ॥ २७१ ॥

इस प्रकार प्रसादी ले कर (नाना प्रकार के रूप बना कर) बहुत

स्वरूप बना कर घौका बर्तन भाड़ू, इत्यादि धुलवा कर समस्त किंकर्य
कराती है ॥२७२॥

॥ दोहा ॥

तब लगि प्रभु सिय सखिन युत, सुमन शृंगार उतार ।
चर्बित मुख तांबूल पुनि, भूषण बसन सुधारि ॥२७३॥
करि पुष्पांजलि सहचरिन्ह, असन आरती कीन ।
लेकर बीरी लाल तब, हँसि २ सब कहँ दीन ॥२७४॥

चौ०—तब लग सखि सब सौज बनाई ।

पुनि इक हँ प्रीतम ढिग आई ॥२७५॥

रस मंजरी प्रभु सन्मुख कीनी ।

हँस कर लाल बीड़िका दीनी ॥२७६॥

बार २ शिर नैननि लावत ।

रस मंजरी पद रजहि मनावत ॥२७७॥

॥ दोहा ॥

यहि विधि छिनक बिताय के, कछु आलस बस लाल ।
सैन कुंज गवने मुदित, संग सखिन के जाल ॥२७८॥

अर्थ—तब तक वहां श्री प्रीतम प्रिया जू ने सखियों सहित फूलों
का सिंगार उतारा और श्री मुख कमल में पान चर्बित करते हुये प्यारी
सखियों सहित भूषण बसन धारण किये ॥ २७३ ॥

जब तक श्री सरकारजी ने भूषण बसन धारण किये तब तक
सहचरियों ने भोजनान्तर की असन आरती कर पश्चात् विधि पूर्वक
भोग आरती कर पुष्पांजलि की तब श्री प्रीतमजी ने निज हस्त कमल
से मंद २ हास युक्त सबको पान बीरियां प्रदान की, मातो सबको बिदा

क्रिये (बीरी प्रसादी ले कर सब निज २ बिभ्राम कुंज को जाती हैं)
जब तक यहां सखी प्रसाद लिये ॥ २७४ ॥

तब लग श्री रस मंजरीजी अनेकों रूपों को धारण कर सैनाग्रह
की सैन की उपयोगी समस्त सौज सामग्री सजा कर अर्थात् तैयार कर
पुनः (एक रूप हो कर) श्री प्रीतमजी के निकट आई ॥ २७५ =

इस रस मंजरीजी को सखियों ने प्रीतमजी के निकट सन्मुख
कर दिया ॥ तब श्री प्रीतमजी ने मंद २ मुसकाते हुये पान बीरी प्रसादी
ही ॥ २७६ ॥

(श्री रस मंजरीजी) उस प्रभु प्रसादी को बार २ नेत्रों में शिर
में बड़े अनुराग पूर्वक लगा २ कर श्री युगल सरकारजी की चरण रज
को मनाती हैं ॥ २७७ ॥

इस प्रकार थोड़ा समय बिता कर श्री युगल सरकारजी ने
आलस का मिस किया आलस बस जान कर सखियों ने सयन कुंज
पधारने की बिनय की और श्री प्रीतमजी सहित प्रियाजी तथा समस्त
परिकरों के (सखी समूहों के) साथ सयन कुंज को परम आनंद के
साथ पधारे ॥ २७८ ॥ (मध्यान बिभ्राम कुंज)

चौ०—सो आराम भवन सुठि सोहा ।

जो विलोक ऋतुपति मन मोहा ॥ २७९ ॥

रंग २ के फूल सुहाये ।

लघु तरु ललित सकल छवि छाये ॥ २८० ॥

षट ऋतु प्रति मंदिर सुख दायक ।

जहँ नित रमत सिया रघुनायक ॥ २८१ ॥

तासु मध्य उत्तीर को मंदिर ।
 जल के छुटत फुहारे सुन्दर ॥२८२॥
 संग मंजरी सखि अति प्यारी ।
 हास बिलास करत सुख भारी ॥२८३॥
 पुनि तहँ बैठि छिनक प्रभु बितयो ।
 तब सिय चंद्रकला तन चितयो ॥२८४॥
 लेकर जंत्र मधुर सुर गाई ।
 सारंग राग अधिक सुखदाई ॥२८५॥
 पुनि प्रभु रस मंजरी तन हेर्यो ।
 लेकर जंत्र राग निज छोर्यो ॥२८६॥

अर्थ—अब श्री स्वामीजी मध्यान सयन कुंज का अति सूक्ष्म रीति से वर्णन करते हुये कहते हैं कि वह सयन कुंज (आराम भवन) परम सुन्दर शोभायमान हो रहा है जिसे अवलोकन करते ही साक्षात् बसंत जो अति रमणीय सबकी मोह लेने वाला या सबके मन को अपने बस कर लेने वाला है—सो वही इस कुंज की अलौकिक आश्चर्य मयी शोभा को देख कर मोह जाता है (लजित होता है ॥ २७९ ॥

इस आराम भवन के प्रथम आवरण में रंग बिरंगे परम मनोहर फूलों के गमले सजे रखे हैं और भी अनेकों प्रकार के छोटे मधुर वृक्ष अपनी समस्त छवि से पूर्ण अथवा छाये हुये गमलों में लगे हुये हैं ये सयन कुंज के इस आवरण में छोटे २ मधुर परम मनोहर अति ललित वृक्षों के जिनमें रंग बिरंगे फूल लगे हुये हैं ऐसे गमले सजे हुये हैं ॥२८०॥

इस सयन कुंज के प्रत्येक मंदिर पर अष्टाष्टकल षट् पितु बिहार

की सौज सामग्री षट ऋतानुकूल सुख देने वाले. ठामों में शुशोभित हैं जहाँ पर नित्य श्री सीतारामजी रमते अर्थात् विश्राम करते हैं ॥ २८१ ॥

तिम समस्त मधुर वृत्तों के बीच में प्रीषम काल के सैन का सुन्दर मंदिर शोभित हो रहा है जिसमें सुन्दर जल के फुहारे छूट रहे हैं ॥ २८२ ॥

श्री युगल सरकार के साथ में जो अति प्यारी सुन्दर मंजरी हैं वे सब हास विलास अनेकों प्रकार से करती हुई अति सुख को प्राप्त हो रही हैं ॥ २८३ ॥

इस प्रीषम ऋतु के मंदिर में थोड़ी देर के लिये श्री युगल सरकारजी विराज गये तब श्री प्रियाजी ने श्री चन्द्रकलाजी की ओर (चितैया) देखा ॥ २८४ ॥

तब श्री चन्द्रकलाजी जंत्र बीणा हाथ में लेकर मधुर स्वर से सारंग राग जो इस समय का अधिक सुख देने वाला है गाने लगी जिससे श्री सरकारों के निद्रा आजाय ॥ २८५ ॥

पुनः श्री प्रीतमजी ने इस रस मंजरी की ओर देखा तब इसने श्री बीणा जंत्र हाथ में लेकर अपना सुन्दर मधुर २ धुनि में राग अलापने गाने लगी वह कैसे कि:-

“झीने स्वर ध्वनि धरण न जाई । सुनि प्रभु नैन रतीली छाई” ॥

अर्थात् ऐसी मधुर सुरीली ध्वनि से श्री रस मंजरीजी ने गाया कि जो वर्णन नहीं की जा सकती जिसे श्रवण द्वारा सुन कर श्री प्रीतमजी के नेत्रों में आलस (निद्रा) छागया ॥ २८६ ॥

चौ०-दंपत उठि पुनि सैन किये तब ।

निज २ ठांव सखी बिलसत सब ॥ २८७ ॥

कोउ गावैं कोउ बाध बजावैं ।

कोउ मीठे कल बचन सुनावैं ॥ २८८ ॥

कोउ हँसि २ सखि बतियां करें ।
कोउ दंपति लीला अनुसरें ॥२८६॥

अर्थ—तब फिर दोनों सरकारन ने उठ कर मध्यान सयन कुंज में सयन किया और अपनी २ सेवा में समस्त परिकर सखीगन सावधान हैं और अपनी २ चौकसी के ठामों पर आनंद पूर्वक अपनी २ सेवा पर तत्पर हैं ॥ २८७ ॥

कोई सुन्दर मधुर २ गाय रही हैं कोई मधुर मनोहर बाजे बजा रहीं हैं कोई मन मोहन सुन्दर मीठे बचन सुना रहीं हैं ॥ २८८ ॥

कोई परस्पर हँसि कर नाना प्रकार की बातें कर रहीं हैं और कोई सखियां श्री युगल सरकारन का रूप बन २ कर दंपति लीला का अनुकरण करती हैं (अनेकों प्रकार की दंपति लीला करती हैं) ॥ २८९ ॥

चौ०—पुनि प्रभु जगे जानि भई ठाढ़ी ।

निज २ टहल लिये सुख बाढ़ी ॥२९०॥

ले दौड़ी कोपर धरि दीनी ।

मुस मजन कर बीरी लीनी ॥२९१॥

कोउ कछु मेवा लेकर थारीं ।

आनि धरीं सब सौज सम्हारीं ॥२९२॥

ले प्रभु कर कछु भोजन कीन्हो ।

सिय युत शेष सखिन कहँ दीनो ॥२९३॥

करि अचमन तांबूल प्रभु पावत ।

आप लेत अरु प्रियहि पवावत ॥२९४॥

यहि विधि नित युग याम बितावत ।

तहां ते सर्वतोष ग्रह आवत ॥२६५॥

अर्थ—सखियां इस प्रकार (उपरोक्तानुसार) अपने २ पहर पर स्थित हैं इतने में श्री युगल सरकार का जागरन हो जाता है और श्री सरलार जाग उठे ऐसा जान कर अपनी २ सेवा में सावधानता से खड़ी हो गई और सजग हो अपनी सेवा टहल लिये सुख पूर्वक खड़ी हुई परम सुखी हो रही हैं ॥ २९० ॥

कोई ने शीघ्रता पूर्वक दौड़ कर मुख मंजन के लिये श्री युगल सरकार के सन्मुख कोपर रख दिया तब श्री सरकारन ने मुख धोकर पान बीरी इत्यादि ली ॥२९१॥

इतने में किसी सखी ने कुछ थोड़ी नाना प्रकार की मेवा सुन्दर मणि जड़ित थारों में लाकर सब सौज सामग्री सहित सम्हार कर श्री युगल सरकारों के सन्मुख रख दिया ॥२९२॥

श्री प्रिया जी के सहित कुछ थोड़ा मेवा पाय कर (भोजन कर) श्री प्रिया जी के सहित अपनी प्रसादी अर्थात् शेष सखियों को दिया कहने का तात्पर्य यह है कि श्री प्रिया जी निज प्रसाद किसी को देती जाती है और श्री प्रीतम जी अपना प्रसाद किसी को देते जाते हैं ॥२९३॥

अनंतर श्री युगल सरकार जी आचमन करते हैं तब सखियां पान बीरियों की थाली श्री युगल सरकार के सन्मुख करती हैं तब श्री प्रीतम जी पान पाकर स्वयं निज कर कमलों से श्री प्रिया जी को थारी से बीरी उठा २ कर पवाते हैं ॥२९४॥

इस प्रकार (उपरोक्तानुसार) श्री युगल सरकार जी के दो याम नित्य बीत जाते हैं फिर आराम भवन से सर्वतोष सभा मंडप में आते हैं ॥२९५॥

चौ०—अति आयुत शुभ चौक बिराजी ।
 भांति २ सिंहासन साजी ॥२६६॥
 मध्य हेम सिंहासन सोहा ।
 छत्र चँवर युत लखि मन मोहा ॥२६७॥
 तंह दंपति बैठे सुधि पावैं ।
 निज अवसर लखि गुणि सब आवैं ॥२६८॥
 राज भाट बंदी उच्चारैं ।
 अपनो २ विधि ध्वनि करैं ॥२६९॥
 प्रभु मुख लखि सब सुधि विसरावैं ।
 निज २ वांछित फल सब पावैं ॥३००॥

॥ दोहा ॥

राज सभा आगमन लखि, सखि स्वामिनी समेत ।
 लालन मूरति हृदय धरि, रुखि लख चलो निकेत ॥३०१॥

अथ—इस सभा मंडप का चौक चारों ओर अति विस्तृत लंबा चौड़ा बराबर सुन्दर शोभित हो रहा है जिसमें अनेकों आंति २ के सिंहासन राज रहे हैं ॥२९६॥

इन सब सिंहासनों के मध्य कंचन का एक अति रमणीक छत्र चँवर युक्त मणि जड़ित सुन्दर सिंहासन शोभित हो रहा है जिसे देख कर मन मोह जाता है ॥२९७॥

तिस पर श्री युगल सरकार जी बिराज गये और इनके बिराज ने जो सुधि पा २ कर अपना २ अवसर देख सब गुप्ती जन आने लगे ॥२९८॥

सो राज भाट, (जो राजों के गुण ही वर्णन करते हैं) और
बंदीजन (जो राजों के विरुद्ध वर्णन करते हैं) अपनी २ विधि पूर्वक
नाना प्रकार की प्रसन्नता सूचक ध्वनि करते हैं ॥२९९॥

श्री रघुवंशमणि सरकार जी का श्री मुख कमल अवलोकन कर
अपनी २ सब सुधि भूल जाते हैं (प्रसन्नता से भर जाते हैं) और अपनी
इच्छानुकूल फल पाते हैं (यह लोग सर्वतोप के बाहर प्रथम आवरण में
गुण वर्णन करते हैं) ॥३००॥

यहां अब राज सभा है, सब का यहां आगमन होगा ऐसा
विचार कर श्री स्वामिनी जी अपनी सखियों के सहित श्री प्रीतम जी
का रुख लख (कि श्री प्रिया जी भीतर पवारें) उनकी श्याम
सुन्दर मधुर मूर्ति हृदय में धारण कर भीतर महलों में पधार
गई ॥३०१॥

॥ दोहा ॥

कहुक समय तिन सहित प्रभु लीला ललित निहारि ।
जेहिजस रुचि सनमान तेहि राज निकट उर धारि ॥३०२॥

चौ०—चढ़ि सुख पाल लाल बहु साथा ।

सह समाज आवत रघुनाथा ॥३०३॥

चारहु दिशि सचिवन सुत सोहैं ।

गुनि जन गान करत मन मोहैं ॥३०४॥

येहि विधि आय राज ग्रह बैठे ।

महाराज दशरथ जहैं बैठे ॥३०५॥

॥ दोहा ॥

राज सभा लखि दूरतें, उतरि मत्त गज चाल ।
 चले सचिव सुत कर गहे, लखिजन होत निहाल । ३०६।
 भरतादिक सो दरशहित, नृप ढिंग पहुँचै जाय ।
 करि जुहार महि माथ धरि, शोभा कहि न सिराय । ३०७।
 बहु राजन की बात रहि, सोउ विसरो तेहि काल ।
 नृपति दीठ प्रभु बदन पर, थके लखि सकल भुवाल । ३०८।
 शीश घ्राण कर गोद ले, बैठे राजिव नैन ।
 पूछति अति आनंद सों, नहि आवत मुख बैन । ३०९।

अर्थ—यहां कुछ समय तक श्री रघुनाथ जी सब समाज सहित
 विराजते हुये, दर्शनाभिलाषियों की प्रेम मयी परम मनोहर ललित
 लीलायें देखने लगे और उनकी रुचि अनुकूल उनका सम्मान कर श्री
 चक्रवर्ती जी महाराज के निकट जाने की इच्छा करने लगे (यहां श्री
 नाभा स्वामी जी शान्त, वास्य, सख्य, वात्सल्यादि रसों को रस राज
 शृंगार के अन्तर गत प्रगट रूप से, संक्षेप में, कुछ वर्णन करते हैं) ॥ ३०२॥

अतः श्री रघुनाथजी की इच्छा होते ही वहां से जाने की तैयारी
 सख्य कर श्री सरकारी सवारी लग गई और इस प्रकार अपनी सब
 समाज के सहित तथा अपने तीनों भाईयों के सहित अपने २ मुखपालों
 पर आरुढ़ हो मुखपालासीन श्री रघुनाथजी चले जा रहे हैं ॥ ३०३ ॥

जिनके चारों दिशाओं की ओर मंत्रियों के पुत्र और आगे २
 गुनीजन नाना प्रकार के मन मोहक अति मनोहर गान करते हुये शोभित
 हो रहे हैं ॥ ३०४ ॥

इस तरह से श्री सरकारी सवारी का राज महल में प्रवेश हुआ जिसमें श्री चक्रवर्तीजी महाराजसभा के मध्य बिराज रहे हैं अर्थात् जहाँ श्री चक्रवर्तीजी महाराज की सभा लग रही है ॥ ३०५ ॥

श्री रघुनाथजी श्री चक्रवर्तीजी महाराज को राज सभा में ब्राज मान देख सवारी से उतर कर मंत्रियों के कुंवरो के हाथों से अपने कर कमल मिलाये अपनी स्वभाविक मत्त गज चाल से भूमते हुये, मन्द मन्द गति से उनकी ओर बढ़े दूर से ही समस्त राज सभा गण सभी श्री रामचन्द्रजी के ऐसे दर्शन करते ही निहाल हो गये (अति आनन्द में भर गये) अथवा ऐसा देखने वाले प्रिय जन निहाल हो जाते हैं ॥ ३०६ ॥

और इस प्रकार श्री रघुनाथजी ने सहित भरतादिक भ्राताओं के श्री चक्रवर्तीजी के निकट पहुँच कर पृथ्वी में मत्था झुका कर जुहार (पद बदन) की जिसकी शोभा अकथनीय है ॥ ३०७ ॥

जिस समय श्री रामलालजी अपने भाईयों सहित श्री चक्रवर्तीजी के निकट पहुँचे उस समय पृथ्वी मंडल के राजाओं की बातें राज सभा में हो रही थी, जिसे श्री चक्रवर्तीजी महाराज सुन रहे थे (कि कौन से राजा अपनी प्रजा के साथ कैसा धर्मानुकूल आचरण करते हैं। इत्यादिक) ज्योंही श्री चक्रवर्तीजी ने अपने प्यारे लालों तथा श्री रामलालजी को देखा कि उनकी दृष्टि श्री मुख चन्द्र पर चकोरी वत् ठहर गई। वह सब सभा की बातों को भूल गये और श्री रामलालजी के अनुपम दर्शन सुधा का अत्रिप्ति भाव से रसास्वादन करने लगे। ऐसी परम प्रेम मयी दशा को तथा श्री राजकुमारजी की अनुपम लावण्यता देखि सब राज सभा के सदस्य राजागन भी थकित होकर "इक टक लोचन टरहि न टारें" के अनुकूल श्री रामजी के दर्शनानन्द का लेने लगे ॥ ३०८ ॥

श्री चक्रवर्तीजी को मारे प्रेम के न रहा गया, और श्री रामलाल

जी को प्रथम गोदी में लेही लिया और शीश सूँघ कर चुम्बन लेते हुये
 बार२ हृदय से लगाने लगे । वे अत्याध्यान से प्रिय वचनों का श्रवण । द्वारा
 रस पान करने के लिये पूछते हैं (नाना प्रकार के वात्सल्य रस मयी प्रश्न
 करते हैं) परन्तु आप (श्री चक्रवर्तीजी) के श्री मुख से प्रेमबस जल्दी से
 वचन नहीं निकलते हैं ॥ ३०९ ॥

चौ०—कहो लाल कछु भोजन कीना ।

निज कर ते कछु अनुजन दीना ॥ ३१० ॥

तुमहि लखन कैसे करि मानत ।

भरत तुमहिं किमि कै अनुमानत ॥ ३११ ॥?

रिपुहन तुमहिं कवनि विधि हेरत ।

सचिव सुतन तुम का कहि ढेरत ॥ ३१२ ॥?

मुख चुंवत नृप अंक लगावत ।

बिन देखे की तपन बुझावत ॥ ३१३ ॥

मधुर वचन कहि २ प्रभु तबहीं ।

मन बांछित सुख दीन्हों सबहीं ॥ ३१४ ॥

चख चंचल करि अनुज निहारे ।

हय गय रथ निरखन चित धारे ॥ ३१५ ॥

अर्थ—श्री चक्रवर्तीजी महाराज पूछते हैं “कि कहिये लालजी !
 कुछ आपने भोजन किया है और अपने श्री कर कमलों से अपने भाईयों
 को कुछ पवाया है (दिया है) ? ॥ ३१० ॥

कहिये आपको लखनलालजी कैसे मानते हैं (आप पर कैसा

प्रेम करते हैं) और भरतलालजी का आप पर कैसा प्रेम है तथा वह भी आप को कैसा मानते हैं ॥ ३११ ॥

और, हे लालजी ! रिपुहनलालजी तुम्हारी ओर किस प्रकार अवलोकन करते हैं और मंत्रियों के पुत्रों को तुम कैसे क्या कह कर बुलाया करते हो ॥ ३१२ ॥

इस प्रकार श्री चक्रवर्तीजी महाराज परम वात्सल्य प्रेमोन्मत्त हो कर बार २ श्री रामलालजी के मुखकमल का चुम्बन करते हुये अपने हृदय से लगाते हैं और इस प्रकार बियोग से तपे हुये हृदय की तपनि श्री लालजी को हृदय लगाकर (हृदय तपन को) शान्त कर रहे हैं (बियोग से तात्पर्य यह है कि बड़ी देर से न देखा था अतः बियोग था) ॥ ३१३ ॥

इस प्रकार श्री चक्रवर्तीजी के प्रश्न सुन कर श्री रामलालजी ने अपने मधुर मन मोहन वचनों द्वारा सबके उत्तर दिये (कि प्यारे लखन लालजी भरतलालजी पथा रिपुहनलालजी हमारा बड़ा आदर करते हैं, यथोचित मर्यादा से भी ज्यादा हमारी मर्यादा रखते हैं, और हम अपने मंत्री पुत्रों को दास की प्रकार प्रिय बानी से बुलाया करते हैं) । समस्त सभा के राजागण जो इनके दर्शन से थकित हो गये थे, इनकी वचन सुधा का कर्णों द्वारा पान किया चाहते थे । अतः श्रीरघुनाथ जी ने उपरोक्तानुसार उत्तर देकर सब को मनवांछित सुख दिया ॥ ३१४ ॥

अनंतर श्री राम लाल जी ने कुछ चंचल नेत्रों द्वारा भाइयों की ओर देखा (मानो यह जनाते हैं कि अब चलना चाहिये) और हाथी घोड़ा देखने कैसा रुख किया । श्री चक्रवर्तीजी महाराज ने यह समझ कर कि यह संकोच बस आज्ञा नहीं मांग रहे हैं, इनका चित्त यहां सेजाना चाहता है) आज्ञा दी कि हे लाल जी

आइये और आनंद सहित अपने भाइयों को साथ ले इच्छानुकूल
बिहरिये ॥३१५॥

चौ०—उठे ललकि नृप आयसु पाई ।
प्रथम गये हय शाल सुहाई ॥३१६॥
अति आयुत संकुल वर बाजी ।
रंग २ प्रति पंक्ति बिराजी ॥३१७॥
निज २ अश्व सराहन लागे ।
भारि पोछि चुचकार सभागे ॥३१८॥
कोउ तुरंग की जाति गनावैं ।
कोउ सुरातिन बचन सुनावैं ॥३१९॥
सुनि प्रिय बचनहिं करि हित हैरैं ।
निज पति समुझ पलक नहिं फेरैं ॥३२०॥
पुनि कोउ कहत सुनहु रघुराई ।
गज सावकन विलोकहु जाई ॥३२१॥

अर्थ—श्री चक्रवर्ती जी महाराज की आज्ञा पाकर भाईयों सहित
श्री रामलाल जी उठे और समाज सहित प्रथम सुन्दर, शोभायमान
अश्वशाला में पधारे ॥३१६॥

यह अश्व शाला चारों ओर एक सी लम्बी चौड़ी अति विस्तीर्ण
घोड़ों की थानों (यानी घोड़ों के बंधने के स्थलों) से भरी हुई, जिसमें
अनेकों रंग २ के सुन्दर श्रेष्ठ घोड़ों की पंक्तियां सुशोभित हो रही हैं,
शोभित हो रही हैं ॥३१७॥

बढ़ जाकर चारों लाल जी अपने २ घोड़ों की सराहना करने

हुये उनको भारते, हस्तकमलों से ठोंकते, पोछते और प्रेम से चुचकार
ने लगे ॥३१८॥

कोई घोड़ों की जातियां गना २ कर घोड़े की आधि बतलाते हैं।
कोई उनके रक्तक से कहते हैं "कि इनको इस प्रकार खिलाना, पिलाना
नहलाना और इस प्रकार इनकी चौकसी रखते हुये रातब बढ़ा देना"
इत्यादि बातें कहते हैं। और सराती ॐ ग्रन्थ के अमुकूल लक्षण घोड़ों
के बतलाते हैं ॥३१९॥

अब घोड़े अपने स्वामियों के इस प्रकार हित मय वचनों को सुन
कर प्रेमपूर्वक उनकी ओर हिकर २ (हिनहिना कर) के हेरते हैं और अपने २
स्वामियों को पहिचान कर उनकी ओर से दृष्टि नहीं टालते हैं, इकट्ठ
पलक रहित देख रहे हैं ॥३२०॥

इतने में कोई सखागन कहने लगते हैं कि "हे रघुवंशरायजी सर"
कार! अब हाथियों के बच्चों को भी हाथी शाला में जाकर देखना चाहिये
॥ ३२१ ॥

चौ०-तिनकी रुचि लखि प्रभु मुसकाहीं ।

सानुज चलि गयंद ग्रह जाहीं ॥३२१॥

भांति २ के गज बहु रंगा ।

श्याम सेत एक रदन भुजंगा ॥३२३॥

कोउ अति बड़े मध्य कोउ बालक ।

कर फेरत निरखत निज पालक ॥३२४॥

॥ दोहा ॥

पुनि रथ शाल विलोक प्रभु, अन गिन जान सुरंग,
भांति २ बहु देश प्रति, निज लखि लजत पतंग ॥३२५॥

ॐ एक सराती ग्रन्थ होता है जिसमें सर्व प्रकार के घोड़ों के सुभासुम लक्षण
विलेख रहते हैं ।

अथ—तिन सख्यों की ऐसी इच्छा देख कर मंद २ मुसकाते हुये तीनों भाईयों के सहित श्रीरामचंद्रजी गज शाला में पधारते हैं॥३२२॥

(यह हय शाला के समीप ही गज शाला है) इस गज शाला में अनेकों भांति के रंग २ के अगणित हाथी और एक दांत वाले स्वतः श्याम तथा अति भुजंग काले रंग के हाथी शोभित हो रहे हैं ॥ ३२३ ॥

कोई हाथी अति बड़े, कोई मझोले (न छोटे न बड़े) और कोई छोटे २ बालक रूप हैं । तिन छोटे २ हाथियों के बच्चों पर श्री राघवजी अपने हस्त कमल फेरते हैं । इनके प्रेम को देख के गज शायक श्रीराघवजी की ओर अपना पालक (मालिक) समझ कर देखते हैं ॥ ३२४ ॥

इसके अनंतर कभी श्री रघुनाथजी भ्रताओं सखाओं के सहित रथ शाला में रथों को अवलोकन करते हैं । इस परम सुन्दर रथ शाला में नाना प्रकार के अनेकों देशों के बने तर्ज २ के नक्काशीदार कामों वाले रथ जिनको देख कर सूर्य का रथ भी लज्जित होजाता है, शोभित हो रहे हैं ॥ ३२५ ॥

चौ०—कहुँ बहु जिनसि मृगन प्रभु हेरत ।

भरतादिक सह वर मुख हेरत ॥३२६॥

देख सराहत और दिखावत ।

रक्षक पूछि सुरीति सिखावत ॥३२७॥

पुनि वीथिन रुचि लखन जनाये ।

तब चलि सिंह पँवरि ढिग आये॥३२८॥

॥ दोहा ॥

भरत लखी प्रभु चित चढ़ी, रमन अवध की खोर ।

हय गय रथ सुख जान हित, सब साहनी बहोर ॥३२९॥

॥ दोहा ॥

नैन सेन तिन शीश धरि, हरषि साजि सब साजि ।
गज रथयान अनेक विधि, अमित सवांगे वाजि ॥३३०॥
तब प्रभु सहचर कर धरे, करत परस्पर बात ।
सानुज पद चर अनुज संग, रुचि लखि मग ग्रह जात ॥३३१॥
रवि वंशी रघुवंश जे, नृप सम विभव विलास ।
तिन शिशु प्रभु विनय भिसु, ग्रह प्रति करत प्रकाश ॥३३२॥

अथ—कभी श्री सरकार जी मृग शाला में जाकर अनेकों प्रकार के बहुत से मृग देखते हैं और भरतादिक भाइयों को, मन्त्री पुत्रों को, सखागनों को श्री मुख से वाणी द्वारा बुलाते हैं ॥३२६॥

स्वयं उनकी सराहना करते हुये सबको प्रेम से दिखाते हैं कि देखो भाई, मित्र अथवा सखा! कैसा सुन्दर मृग है। देखो! कैसी चौकड़ी भरता है इत्यादि । और उनके रत्नों को बुलाकर उनसे उनके विषय में पूछ ताछ करते हैं कि इनका तुम कैसा इन्तजाम करते हो और रत्नों का उत्तर सुन कर पुनः आप मृगों के रत्ना करने की बातें तथा सुख दायक सुरीतियां सिखाते हैं कि देखो ऐसा करना और न करना चाहिये इत्यादि ॥३२७॥

इतने में श्री लखन लाल जी रघुनाथ जी को अवध वीथिन अर्थात् खोरन (गलियों) में बिहरने की रुचि जनाते हैं (याद दिलाते हैं) कि अब श्री सरकार को अवध की गालियों में बिचरना चाहिये । ऐसा सुन तथा जान कर श्री रघुनाथजी, सहित भाइयों, सखाओं तथा समाज के सिंहपंवर अर्थात् सिंह दरवाजे के पास आये ॥३२८॥

इतने ही में श्री भरतलालजी ने लखलिया कि श्री सरकार का अब

बीथिन की ओर चित्त गया है अतः वह अब अवध की गलियों में बिहरेंगे। इससे घोड़े, हाथी, रथ, पालकी, सुखयान शालाओं के अप्सरों को बुलाया (क्योंकि सब अप्सर साथ ही में कुछ दूर पर चलते हैं बुलाने पर समीप आते हैं) ॥ ३२९ ॥

और सब को नेत्रों की संतों (इशारों) द्वारा आज्ञा दी कि अपनी शालाओं की सवारियां तैयार कर लाओ और वे भी सेन द्वारा आज्ञा पाय आज्ञा पालन का इशारा कर अर्थात् सेन द्वारा शीश पर हाथ धरि झुक कर अपनी २ शालाओं से सवारियां सजा २ कर लाये। इस प्रकार अनेकों सवारियां एकत्र होगईं, जैसे हाथी, घोड़े, रथ, यान इत्यादिक; क्योंकि प्रथम से ही समयानुकूल सब शालाओं में सवारियां तैयार रहती हैं जिससे आज्ञा देते ही सब सवारियां आगईं ॥ ३३० ॥

तब श्री रघुनाथजी मित्रों से हाथ में हाथ मिलाये एक दूसरे का कर पकड़ लिये) परस्पर मधुर प्रेम भय वार्तालाप करते हुये भाईयों तथा समाज के सहित अवध बीथिन की ओर पैदल चल दिये। पीछे २ समस्त सवारियां सजी हुई आरहीं हैं (क्योंकि जब सवारी की इच्छा होगी सो तैयार ही हैं) मार्ग में जहां २ रघुवंशी सखागनों के ग्रह पड़ जाते हैं तहां सखागन अपने २ रुचि अनुकूल श्री सरकार को अपने घर में लेजाने के लिये इच्छा दिखलाते हैं तब तहां २ श्री महाराज कुमार जी उनकी इच्छा पूर्ण करने के लिये भाईयों सहित उनके घर पधारते हैं ॥ ३३१ ॥

(सब सूर्य वंशी रघुवंशीयों के श्री चक्रवर्ती श्री महाराज की ही तरह वैभव विलासादि हैं) जब वे रघुवंशी कुमार निज २ ओर से श्री सरकार के पधारने की विनय करते हैं तब इस विनय भिपु द्वारा ही श्री राघवजी समाज सहित उन के यहां जाकर उनके ग्रहां को प्रकाशित करते हैं ॥ ३३२ ॥

वी०—जब जेहि के मंदिर प्रभु जाहीं ।
 लखि बिहवल तनु सुधि कछु नाहीं ॥३३३॥
 कोई ले छत्र चँवर कोउ धावैं ।
 कोउ पूजा की साज मँगावैं ॥३३४॥
 कोउ तिय राई लोन उतारैं ।
 कोउ सखीं खिरकीं लगी निहारैं ॥३३५॥
 कोउ गावत छवि प्रभु दिशि निरखैं ।
 कोउ अटन तें कुसमन बरखैं ॥३३६॥
 कोउ भारीं कोपर ले धावैं ।
 कोउ गुलाब कौ अतर मँगावैं ॥३३७॥
 कोउ कहें इनहिं छिनक बिरमाइये ।
 जब लग हम अंतःपुर आइये ॥३३८॥
 कंचन जौकी पीठि सुहाई ।
 सानुज सखन सहित बैठाई ॥३३९॥
 निज कर विजन करत कोउ ठाढ़ो ।
 कोउ पूछत मछु आनंद बाढ़ो ॥३४०॥
 लाल बच्छ अति अचरज हमहीं ।
 नृप बिदेह किम जानों तुमहीं ॥३४१॥
 जथा चरित ऋषि बधू उधारन ।
 मुनि कौशिक किम यज्ञ उवारन ॥३४२॥
 यह मिस प्रभू छिनक बिरमाये ।
 तिन रुचि लखि मृदु वचन सुनाये ॥३४३॥

हेम थार भरि मधुर मिठाई ।
धरि आगे बहु विनय सुनाई ॥२४४॥

॥ दोहा ॥

निज कर चरण प्रक्षालि कर, अनुजन सखन समेत ।
बैठारत विनती करत, पावत लखि हिय हेत ॥३४५॥

अर्थ—जब जिस रघुबशी जन के घर श्री राजकुमारजी पधारते हैं तब तिस घर को स्त्रियां श्री राघवजी के दर्शन पाकर आपका सरल स्वभाव देख बिह्वल दशा में हो जाती हैं और शरीर तक की सुधि भूल जाती हैं ॥ ३३३ ॥

ऐसे प्रमानंद में मुदित हो जाती हैं कि कोई छत्र कोई चँवर लेकर धावती हैं कोई षोडसोपचार पूजा सामग्री मगाती हैं और आपका विधि पूर्वक पूजन करती हैं ॥ ३३४ ॥

कहीं कोई वात्सल्य भावावेशी तिय श्री राजकुमारजी की छवि पर राई लौन उतारती हैं (ढीठ के भय से) और कोई (बधूगन है) सखी गन (जो आपके सामने आने की नहीं) खिड़कियों में हो कर श्री प्राण जीवनजी को निहारती हैं ॥ ३३५ ॥

कोई सखीगन छवि संबंधी प्रसंशा सूचक गाना गाती हुई श्री प्रभु की ओर निरख रही हैं और जब मार्ग में सवारी लगी हुई श्री सरकारजी सहित समाज के जा रहे हैं तब सखियां अटन पर चढ़ २ कर फूल-बर्बा करती हैं कि जरो इस प्रकार से हमारी ओर भी श्री प्रभु देखें और हम भली प्रकार दर्शनानंद के भागी हों ॥ ३३६ ॥

कहीं कोई सखियां भारी, कोपर ले २ कर दौड़ती हुई आती हैं कि सवारी निकल न जाय । कोई गुलाब का अंतर मँगाती हैं ॥३३७॥

कोई आपुस में कहती हैं कि इनको थोड़ी देर किसी प्रकार विरमाया जाय, (ठहराया जाय) जब तक हम अंतःपुर से भोजनादि की वस्तुयें ले आती हैं ॥ ३३८ ॥

(अब श्री प्रभु को विलमाया जाता है) कोई परम सुन्दर स्वर्ण मयी चौकियां सिंहासन लेकर आगईं जिन पर भाईयों सखाओं के सहित श्री राजकुमारजी को बैठाने लगीं ॥ ३३९ ॥

कोई अपने हाथों से सुन्दर बिजन खड़ी हुई करने लगी । कोई आनंद के साथ बात्सल्य के आनंद रस में भरी हुई श्री राववजी से कुछ पूछने लगती हैं ताकि कुछ देर इसी मिसु से ठहर जाय ॥ ३३९ ॥

हे लालजी! हे वत्स! हमको इस बात का बड़ा आश्चर्य है कि आप को बिना किसी परिचय के श्री विदेहजी ने कैसे जाना ? ॥ ३४१ ॥

अहिल्योद्धार की कैसी कथा है ? (अहिल्या का आपने किस प्रकार उद्धार किया) अर्थात् आपने गांतमजी की आप से उसको चरण रज स्पसे करा कर आप मुक्त कर दिया । यह कैसा चरित्र है ? आपने श्री विश्वामित्रजी के यज्ञ की रक्षा इतने प्रबल राक्षसों के होते हुये भी, किस प्रकार की ? इत्यादि प्रश्न करके ठहराया ॥ ३४२ ॥

इस प्रकार उपरोक्त प्रश्नों द्वारा बात्सल्य रसावेशी सखियों ने श्री प्रभु को थोड़ी देर के लिये ठहरा लिया और श्री मुख से कुछ मनोहर बचनों के सुनने की इच्छा की । तिनकी ऐसी रुचि जान कर श्री रघुनाथजी ने मंद २ मुसकान के साथ प्रश्नोत्तर द्वारा मन मोहन मधुर बचनों को सुना २ कर उन सबका प्रबोध कर दिया ॥ ३४३ ॥

(पूर्व कह चुके हैं कि जो पहले कह गई थी “कि इनको थोड़ा विरमाइये हम अंतःपुर से जल्दी आते हैं । श्री कुमारजी को ठहराइये”) वही सखीगन कंचन थारों में अनेकों प्रकार की मनोहर मधुर मिठाइयों को ले कर आगईं और उनको (थारों को) श्री रघुनाथजी के सम्मुख

रख कर ग्रहण करने के लिये बड़े नम्र भाव से बिनय करने लगीं । कि
 "हे लालजी इसे ग्रहण कीजिये" ॥ ३४४ ॥

और सब सखाओं भाइयों सहित श्री राघवजी के चरण कमल
 अपने हस्त कमलों से धो अतिआदरपूर्वक बैठाल कर भाजन की निती
 करती हैं । इनका ऐसा हार्दिक प्रेम देख कर श्री राजकुमारजी समाज सहित
 भोजन करते हैं । और इस तरह उनको प्रसन्न करते हैं अनंतर वह सबको
 आचमन कराय, मुख कमल चरण आदि धुलाय अगाध से पाछ पुनः
 आसन पर बिराजमान कराती हैं ॥ ३४५ ॥

चौ०-द्वै वीरिं आरतीं उतारैं ।

त्रण तोरैं निज भाग्य विचारैं ॥ ३४६ ॥

कोउ कह धन्य कौशल्या देवी ।

कोउ कह 'नृप दशरथ गुरु सेवी ॥ ३४७ ॥

कोउ कह हम कछु और न जानैं ।

सब से धन्य जनक जो मानैं ॥ ३४८ ॥

कोउ कह हमरे सुवन सयाने ।

जिन हित ते आवत हम जाने ॥ ३४९ ॥

तिनके भागन हम निसतरि हैं ।

जे ऐसी मूरति उर धरि हैं ॥ ३५० ॥

॥ दोहा ॥

जे गुरु जन करि लाजतें, निकट न आईं जानि ।

ते तलफहिं चढ़ि २ लखहिं, दशान जाय बखानि ॥ ३५१ ॥

अथ—अनंतर सुन्दर ललित बीरी अर्पण कर, अतर इत्यादिक लगा, बिधि पूर्वक अर्घादिक दे सुन्दर आरती उतारती हैं। अर्घादिक जल साफ़ी फेर पुष्पांजलि देकर उनकी छवि पर त्रण तोरती हैं (दीठ भय से। दूसरे कि इस छवि के सामने सम्पूर्ण जग की छवि त्रण वत है) वे अपने अहो भाग्य मनाती हुई विचार करती हैं कि हम धन्य हैं, जिसे यह अनुपम दर्शनद प्राप्त है ॥ ३४६ ॥

कोई कहती है “कि धन्य है श्री कौशल्याजी देवी को जिनसे यह उत्पन्न हुये हैं”। कोई कहती हैं कि “श्री चक्रवर्तीजी धन्य हैं”। भाव यह है कि गुरु चरण कमलानुरागी महाराज धन्य हैं जिनकी सेवा का फल रूप यह हैं (ये सखियां सब वात्सल्य रसावेसी हैं ॥ ३४७ ॥

कोई और सखियां कहती हैं “कि हम और कुछ नहीं जानतीं हम तो श्री किशोरीजी को धन्य मानती हैं, जिन्हें ऐसे श्रेष्ठ परम सुन्दर सुख-दाई वर प्राप्त हुये ॥ ३४८ ॥

कोई कहती हैं “कि हमारे पुत्रों के भाग्य धन्य हैं जो बड़े सयाने हैं जिनके प्रेम बस प्रसन्नार्थ श्री लालजी हमारे मंदिरन में आते हैं और दर्शन देकर आनंद देते हैं। पुत्रों के भाग्य से हमारा भी निस्तार होगा” (वत्सल्य भावका) इत्यादि ॥ ३४९ ॥

इन्हीं बालकों के भाग्य द्वारा हमारा निस्तार हो जायेगा अर्थात् इन्हीं के द्वारा हमको यह दर्शन मिला करेगा। क्योंकि जब इनके हृदय मंदिर में ऐसी मूर्ति रहेगी अर्थात् यह बड़े सयाने हैं जो सदैव ऐसी मनोहर सुखमई मूर्ति को अपने हृदय मंदिर में निवास देते हैं इन्हीं पुत्रों के भाग्यों से हमारा कल्याण होगा अथवा मुक्ति होगी ॥ ३५० ॥

रघुवशियों की बधुयें जो अपने बड़ों की मर्यादा के बस हो श्री चक्रवर्ती कुमारजी के सामने दर्शन को निकट न आ सकीं वह सब बड़ी व्याकुल हो २ कर दर्शनार्थ अटारियों पर चढ़ २ कर भरोखों द्वारा दर्शन

कर रही हैं और दर्शन से वृत्ति नहीं होती हैं तिनकी दशा अकथनीय है।

चौ०—यहि विधि सब के घर प्रभु जाहीं ।

बिहरत अवध वीथिक न माहीं ॥३५२॥

खेल करत अनवन बहु रंगा ।

प्रभु कौतुकी बंधु सब संगी ॥३५३॥

कहुँ सुमनन की चोट चलावैं ।

कहुँ भंवरा जंगी मन भावैं ॥३५४॥

कहुँ कोउ कहत सुनहु रघुराई ।

चलहु आज देखिय फुलवाई ॥३५५॥

महाराज को बाग सुहावा ।

आपु नवीन बाग जो लावा ॥३५६॥

भरत बाटिका रिपुहन बारी ।

लखन ताल लाई फुलवारी ॥३५७॥

॥ दोहा ॥

तिन की रुचि लखि अनुजयुत, सहचर कर धरिलाल ।

नृपति बाग में जाय करि, निरखत लाल तमाल ॥३५७॥

अर्थ—इस प्रकार श्री राघव जी सब पुर बासियों के यहां जा २ कर सब को आनादि करत हैं । समस्त अवध पुरी की गलियों में विचरते हुये कोई भी घर बाकी नहीं रहता है जहां श्री राजकुमार जी नित्य न पहुँचते हों और उनके सब परिवार की कुशल प्रश्न नाम ले २

कर पूछकर उनको प्रसन्न न करते हो (ऐसा आप नित्य प्रति करते हैं) ये वात्सल्य ताकी कैसी अनोखी आश्चर्य मयी बात है पर श्री प्रभु को कुछ भी नहीं है क्योंकि ।

छिन में सबहि मिले भगवाना । उमा मर्म यह कहु न जाना ॥
को रघुबीर सरिस संसारा । शील सनेह निबाहनि हारा ॥३५२॥

श्री चारों राजकुमारों को सहित सखाओं के देखकर अवध बासियों की यह रक्षा होती है कि इनका आपस में खेल भी देखें) अतः उनकी ऐसी इच्छा जान और उसको पूर्ण करने के लिये उन गलियों में श्री राघव जी खेल खेलने लग जाते हैं और अनेकों प्रकार से अनेको खेल खेलते हुये अनेकों कौतुक (तमासे) सहित रंग र के खेल खेलते हैं आप स्वयं कौतुकीश है चाहे जैसा कौतुक कर सकते हैं ॥ ३५३ ॥

कभी फूलों की गेदों से खेलते हुये आपस में गेदों की मारते अर्थात् चोटें चलाते हैं कभी जमीन पर बड़े २ भेरि घुमाते हैं और आपस म कहते हैं कि देखें किसका भँवरा कितनी ज्यादा देर तक घूमता है (भँवरा में डोरी डालकर खींच कर शीघ्रता से घुमाते हैं) ॥३५४॥

कभी कोई सखागन कहते हैं कि श्री रघुनाथजी महाराज चलिये आज फुलवाड़ी को देखें (कि उसकी कैसी तैयारी है) वा खेलने के भ्रम को निवारनार्थ तरकीब द्वारा सुगंधित वायु सेवन कराने के लिये सब विनय कर रहे हैं ॥ ३५५ ॥

श्री चक्रवर्तीजी महाराज का जो सुन्दर बाग अति शोभा युक्त है और आपने जो नया बाग लगवाया है ॥ ३५६ ॥

और श्री भरतलालजी, तथा श्री लखनलालजी और श्री रघुन लालजी ने जो बाग (बाटिकायें बारियां फुलवाड़ियां) लगवाई हैं उनको भी चलते हुये अवलोकन करते चलना चाहिये ॥ ३५७ ॥

ऐसी सखाओं की रुचि देख कर पूर्ण करने के लिये श्री राघवजी समस्त भ्राताओं सखाओं के सहित सहचर रघुवंशी कुमारों के हाथों में हाथ पकड़े हुये अर्थात् कर रखे उन बागों का आर चले और श्री अवधेशजी साराज के बाग में जा कर ताल लताओं की लताओं की शोभा देखने लगे ॥ ३५८ ॥

॥ दोहा ॥

उपवन रत्नक बोलि करि, मिसु कलु तिनहिं सिखाय ।
नेत्र सफल तिन्ह करन हित, दीन्ही युक्त बताय ॥ ३५९ ॥

चौ०—प्रभुहिं देखि ते भाग मनावत ।

अन बन मेवा भेंट चढ़ावत ॥ ३६० ॥

एक २ ले सखा सभागे ।

और आनि प्रभु के धर आगे ॥ ३६१ ॥

तिनहि कृपा करि पाय सराहत ।

मनु तिनके प्रेमहि अव गाहत ॥ ३६२ ॥

पुनि तहं ते जो भरत लगाई ।

हित लखि सोइ विधि तहंहु सिखाई ॥ ३६३ ॥

कोउ अति मेवा सरस सुहाये ।

पुनि और ते भरत लेआये ॥ ३६४ ॥

पुनि लछमन बारी प्रभु आये ।

रिपुहन बाग देखि मन भाये ॥ ३६५ ॥

पुनि निज बाग भरत रुख जानी ।
अनुज सखन हिय हित पहिचानी ॥३६६॥

जाय बाग रक्षक प्रभुहेर्यो ।
सो सुनि आय चरण परि हेर्यो ॥३६७॥

रुख लखि फल अरु फूल सुहाये ।
अगनित मेवा सरस मंगाये ॥३६८॥

अनुजन पूछि २ प्रभु देहीं ।
निज २ गोदन भरि २ लेहीं ॥३६९॥

खाहिं सराहहिं प्रभु तन हेरहिं ।
एक २ को हँसि २ टेरहिं ॥३७०॥

भरत कहें कछु आपुहिं लेहीं ।
रुख लखि लेहि तिनहुँ कहँ देहीं ॥३७१॥

सानुज अनुगन सखन समेता ।
पावत फल प्रभु कृपा निकेता ॥३७२॥

पुनि तहँ ते सरयू तट आवत ।
बैठि बिनक प्रभु हँसत हँसावत ॥३७३॥

॥ बाहा ॥

लखन हिये रुचि जानि के, हय गय जानि हँकारि ।

निज रुचि प्रति अनुरूप सब, दीन्हें बाजि बिचारि ॥३७४॥

अर्थ—बाग रत्नों को बुला कर कुछ शिशा के मिसु मालीगनों से कहते हैं कि हे मालीगनों देखो इन वृत्तों का भुकाव ज्यादा हो गया है इनको छांट कर एक सा कर दो और इन वृत्तों में खातू की आवश्यकता है ताकि इसमें बड़े २ फल लगें इत्यादि बातें कर शिशा के बहाने मालीगनों के नेत्र, कान सुफल करनार्थ श्री राघवजी ने उनका प्रेम प्रबोधन करते हुये युक्तियां बतलाई ॥ ३५९ ॥

वे मालीगन श्री लालजी को सहित समाज के देख कर अपने २ भाग्यों को धन्य मानते हैं कि घर बैठे परम दुर्लभ दर्शन प्राप्त हो रहे हैं और अति शीघ्रता पूर्वक नाना प्रकार की मेवा ताजे फल ला २ कर सुन्दर यथानुकूल पात्रों में भेंट करते हैं (देते हैं) ॥ ३६० ॥

श्री लालजी उनको (सब भ्राताओं सखाओं को) अलग २ भाग कर बांटने लगते हैं कि इतने में मालीगन श्री लालजी के सामने अनेकों रसमयी फल मेवायें सुन्दर पात्रों में ला कर रख देते हैं तब श्री लालजी सहित समाज के सराहना करने हुये उन फलों को पाते हैं ॥ ३६१ ॥

तब श्री लालजी कृपा कर सराह २ फलों को पाते हैं मानो उनके प्रेम को अवगाहन करते हुये उसी प्रेम का रसा स्वादन करते हैं ॥ ३६२ ॥

अनंतर श्री अवधेश कुमारजी इस बाग से हो कर श्री भरतलाल जी की बाटिका अवलोकन करते हुये बाटिका रत्नों को यहां भी बुला कर श्री भरतलालजी की रुचि देख कि यहां भी मालियों को श्री मुख से कुछ उपदेश हो) श्री रघुनाथजी ने यहां के मालियों को भी बाटिका संबंधी शिशायें वृत्तों की मरम्मत, सुझौल तथा सफाई आदि के विषय में दी—और मालीगन भी श्री मुख से शिशा रूरी सधुर बचनों को सुनि अनूपम रूप का दर्शन कर परम आनंदित हुये ॥ ३६३ ॥

कोई मालीगनों ने परम सुन्दर रस मयी अनेकों प्रकार की मेवा श्री रघुनाथजी सामने सुन्दर पात्रों में ला कर रख दी फिर श्री भरत

लालजी ने स्वयं निज कर कमलों से किसी ओर से (जहां अनुपम सुन्दर मेवा, फल उस बागों में लगे थे) ताजे मेवा फल उतार ला कर श्री रामलालजी के सन्मुख रख दिये जिनको सहित भाइयों मित्रों के पाकर श्री रघुनाथजी ने श्री भरतलालजी को परम प्रसन्न किया अर्थात् स्वयं लाये हुये फलों को बड़ी सराहना पूर्वक पाकर श्री रघुनाथजी परम आनंदित हुये जिससे श्री भरतलालजी परम सुखी हुये ॥ ३६४ ॥

अनंतर श्री परम प्यारे राघवजी सखाओं भ्राताओं के सहित श्री लखनलालजी के बाग में पधारे और यहां के बाग रत्नों को भी कुछ बाग संबंधी शिक्षा दे सबके नेत्र श्रवण सुफल कर परम सुन्दर फल मेवादि भ्राताओं सखाओं के सहित कुछ पाकर आनंद पूर्वक श्री लखनलालजी का प्रेम प्रबोधन कर, सहित समाज के श्री शत्रु सूदनलालजी के मन भावते बाग में पधारे और इस मन भावते बाग को अवलोकन कर अति प्रसन्न हुये (अर्थात् बाग मन को भाया) उपरोक्तानुसार यहां के रत्नों को भी बाग संबंधी शिक्षा दे कर फल नेवादि पाकर तथा सबको दर्शनानंद देकर समस्त भ्राताओं सखाओं के सहित आप परम आनंदित हुये ॥ ३६५ ॥

(फिर श्री भरतलालजी की रुचि हुई कि श्री प्राण प्यारे सरकार का निज बाग को भी चलना हो तो अति उत्तम है) अतः इस प्रकार श्री भरतलालजी की रुचि हृदय देख (जान कर) और श्री भक्तजन जीवन श्री प्रभु ने अपने और भ्राताओं सखाओं के हिये का प्रेम देख कर (कि सभी यह चाह रहे हैं कि सरकार अपने बाग को चलें) अपने बाग की ओर प्रस्थान किया ॥ ३६६ ॥

श्री रघुवंश शिरोमणि श्री राघवजी ने निज बाग में आ कर बाग रत्नों को बुलाया अर्थात् टेरा जिस टेरा की परम मनोहर बाणी को सुन कर बाग रत्नक मालीगनों ने आ कर आपके श्री चरण कमलों में शिर रख दिया अर्थात् यथोचित जुहार करके हाथ जोड़ अति विन-

प्रता पूर्वक खड़ हो आपके परम मनोहर मुख कमल की ओर हेरने लगे (देखने लगे) ॥ ३६७ ॥

श्री प्रभुजी का रुख लख कर बाग रत्नक मालीगनों ने परम सुगंधित सुन्दर फूल फलों को लाकर आपके सन्मुख रख दिया तब श्री राघवजी ने ज्ञान गिनते मेवा फल परम मधुर रस मय नाम ले २ कर मैगाये (कि अमुक फलों को अमुक मेवाओं को लाओ) ॥ ३६८ ॥

और उन नाना प्रकार के मेवाओं को जैसी जिसकी रुचि थी उसी प्रकार सबको षूँछ २ कर देते हैं और भ्रातागन सखागन अपनी २ गोद में भर २ कर लेते हैं ॥ ३६९ ॥

समस्त भ्राता सखागन उन फलों को श्री राघवजी की आज्ञा पा २ कर पाते जाते हैं और उन फलों की सराहना (प्रशंसा) करते जाते हैं साथ ही साथ श्री रामलालजी के अनूप रूप का नेत्रों द्वारा रसा स्वादन करते जाते हैं और एकर को हँस का बुलाते हैं (टेरते हैं) ॥ ३७० ॥ आप के टेरेने में ये आशय है कि देखो तो इसमें कैसा स्वाद है

श्री भरतलालजी कहते हैं कि हे सरकार कुछ आप ही मेवा फल आदिकों को पाइये सो श्री भरतलालजी के सहित सब भ्राताओं सखाओं का रुख लख कर श्री सरकारजी-भी फलों को ले २ कर पाने लगे और अपने पाते में से सखओं भ्रातओं को देने लगे ॥ ३७१ ॥

इस प्रकार कृपा सागर अर्थात् कृपा के स्थात श्री राघवजी अपने भाइयों और सखावर्गों के साथ फलादिकों को पाते हैं और उनकी रुचि इच्छा को पूर्ण कर उन पर कृपा करते हैं और उनको प्रसन्न करते हैं ॥ ३७२ ॥

और फिर अपने बाग से सहित समाज के श्री सरयू तट के महलों में पधारते हैं (ये हवाई महल हैं जिसमें जगह २ पर अनूपम मणि मय अनेकों प्रकार के बैठिका श्री सरयू तट पर शोभित हो रहे हैं)

और बैठकों में कुछ २ समय बैठ कर श्री राघवजी अपने भ्रातृओं सखाओं से हँसते और उनको हँसाते हैं अर्थात् ऐसी विचित्र बातें करते हैं कि जिनको सुनकर समस्त भ्राता सखा परिकरों के साथ हँसते हैं और फिर श्री राघवजी के हँसाने के लिये ये लोग भी ऐसी प्रेम पूर्ण हास्य करते हैं कि जिससे श्री लालजी को हँस ही जाता है ॥३७३॥

श्री राघवजी ने श्री लखनलालजी के हृदयेच्छा जान कर—कि लखन भैया के हिये में यह इच्छा (रुचि) है कि सब कोई घोड़े फिरावें अर्थात् गोड़ों के नाना प्रकार के खेल खेले जायें—अतः श्री रघुनाथजी ने घुड़ दौड़ वालों घोड़ों के लाने को हुक्म दिया (सब प्रकार के घोड़े सवारियाँ और उनके अफसर सब साथ ही में हैं ही कुछ फासले से चले आ रहे हैं (उपरोक्त कह आये हैं) तुरन्त ही घोड़े बगैरह सब आ उपस्थित हुये कि चारों भाइयों ने अपने २ रुचि अनुकूल घोड़े लिये और सब सखाओं को भी उनके रुचि अनुसार विचार कर घोड़े दिये गये (क्योंकि श्री चक्रवर्तीजी महाराज के यहां अनेकों राजाओं के यहां से, बिगड़ेले घोड़े, मदान्ध हाथी, अर्थात् जो हाथी घोड़े वे हाथ के हो गये जिन पर कोई सवारी न सका और वे घोड़े जो लगाम तक नहीं लेते इत्यादि आया करते हैं उनको श्री राघवजी स्वयं लगाम लगाते सवारी कर फिरा कर ठीक कर लेते हैं) ॥ ३७४ ॥

चौ०—निज हय चढ़ि प्रभु भरत बढ़ाये ।

लखन शत्रुसूदन मन भाये ॥३७५॥

एक बैस सब सखा सलोने ।

फेरत तुरंग दिशा पर गोने ॥३७६॥

कोउ आगे कोउ पाछे आवैं ।

कोउधीरे कोउ तेज चलावैं ॥३७७॥

कहु चौगान खेल प्रभु करें ।

कहु मृगया खेलन चित धरें ॥३७८॥

कहुं बहु भांति तुरंग नचावैं ।

कहुं सुमनन की चोट चलावैं ॥३७९॥

कहुं अस्त्रन महि डारि उठावैं ।

कहुं चुटकी दै बाजि फिरावैं ॥३८०॥

कहुं चुचकारि तुरंग कहैं रोकैं ।

कहुं ठाढ़े कहि हय सिर ठोकैं ॥३८१॥

यहि विधि खेतत जाम बितायो ।

अर्ध जाम दिन शेष जनायो ॥३८२॥

तब प्रभु तुरत तुरंग विरमायो ।

अनुज सखा सब रुख लखि आयो ॥३८३॥

उतरि २ चुचकारत घोर ।

सो लखि अनुज दास सब दौरे ॥३८४॥

पुनः श्री रघुनाथजी अपने रुचि अनुकूल घोड़े पर चढ़ सुशोभित हुये और अपने तीनों भ्राताओं सखाओं को भी सवार होने के लिये आज्ञा दी कि आज्ञा पा कर समस्त भ्राता सखागन अपने २ मन भावते घोड़ों पर चढ़ कर सुशोभित हुये ॥ ३७५ ॥

समस्त सखागन चारों भाइयों की भांति किशोरावस्था वाले सलोन (सुन्दर) हैं और सब अपने २ गोड़ा पर चढ़े उनको फेरते हैं

अर्थात् चलाते हैं नाना प्रकार की चालें खेल करते हैं जिन घोड़ों की चंचलता देख ज्ञात होता है कि यह दिशाओं को पार कर जायेंगे जिनकी चंचलता देख वायु की गति क्या मनकी गति लज्जित होती है ॥२७६॥

(अब श्री नाभा स्वामीजी कुछ संकेत रूप से "कि घोड़ों को कैसे फिराते हैं ? इसका दिग्दर्शन कराते हैं) कोई श्री रघुनाथजी के आगे कोई पीछे आते हैं कोई घोड़ों को तेज और कोई धीरे मंद र गति से चलाते हैं अर्थात् अपनी र रुचि अनुकूल घोड़ों को फिरा र कर कला दिखाते हैं ॥ ३७७ ॥

कभी कहीं श्री रघुनाथजी चौगान का खेल ठोन देते हैं अर्थात् खेलने लगजाते हैं (चौगान खेल में सब एक चित होकर चकर के साथ चारों ओर घोड़ों को फिराते हैं) और कभी जो अपनी समाज सहित जबकि वह मृगया (शिकार) खेलना चाहते हैं तो इस प्रकार मृगया खेलने लगते हैं ॥ ३७७ ॥

कहीं अनेकों प्रकार से घोड़ों को नचाते हैं कभी घोड़ों पर चढ़े हुये फूलों की गेंदों का खेल खेलते हुये परस्पर चोटें चलाते हैं ॥२७९॥

कभी अनेकों प्रकार के अस्त्रों को पृथ्वी पर डाल कर घोड़ों को झुका कर उठा लेते हैं (घोड़ों को ऐसा सिखाया है कि वो इसारे से ही सब काम सीघ्रता पूर्वक करते हैं क्योंकि घोड़े सब प्रथम के पड़े पड़ाये होते हैं (अर्थात् घोड़े शस्त्र के इस पार से उस पार तक उचक कर धगेर उसे स्पर्श किये पार कर जाते हैं) और घोड़े पर चढ़े र स्वयं उन शस्त्रों को पृथ्वी से उठा लेते हैं (घोड़ों को ऐसा सिखाया है कि वह समय परने पर झुक जाते हैं और इस तरह से चढ़े र घोड़े पर से हथियार उठा लिये जाते हैं और कहीं कभी चुटकी के (उगलियों के शब्द से) शब्द द्वारा घोड़ों को लौटाते हैं यानि घोड़ों को दौड़ते र एक तरफ से दूसरी ओर बिना रोके चुटकी बजाकर दिशा बदला देते हैं ॥२८०॥

कहीं घोड़ों को चुचकार कर (पुचकार के) रोक लेते हैं कभी ठाढ़े (खड़े) होकर ("सावास" घोड़े) ऐसा कहते हुये घोड़े के शिर कंठ को ठोकने लगजाते हैं ॥ ३८१ ॥

इस प्रकार से अनेकों प्रकार के घोड़ों के खेल (पोलू) खेलते २ एक याम व्यतीत कर देते हैं और अब आधा दिन शेष रह गया है ऐसा जान श्री रघुनाथजी घोड़े पर से उतरते हैं ॥ ३८२ ॥

और तब श्री राघवजी ने अपने घोड़े को ठहराया और आप्राण जीवनजी को घोड़ा बिलमाते देख समस्त भ्राता सखागन श्री प्रभुजा को रुख देख उनके शमीप आये ॥ ३८३ ॥

और अपने २ घोड़ों से उतर २ कर घोड़ों को पुचकारते हैं ऐसा देख कर कि अब खेल बंद हो गया है आपके अनुजगन (आपसे छोटे रघुवंशी कुमार और आपके दास) और सेवक आपके समीप दौड़ते हैं जौ जल लेकर प्रथम से ही दास लोग खड़े हैं और कोई घोड़ा पकड़ते हैं कोई कुछ सेवा करते हैं कोई कुछ सेवा करते हैं (समयानुकूल अपनी २ सेवामें दासलोग लगजाते हैं) ॥ ३८४ ॥

चौ०—सीतल जल अति सुरभि सुहावा ।

कर प्रक्षाल सबके करवावा ॥३८५॥

कछुक मधुर मेवा धरि आगे ।

सबहिं देत रुख जानि सभागे ॥३८६॥

ले कर पावत हँसि २ हेरत ।

अनुजन सखन नाम लेटेरत ॥३८७॥

पुनि ताम्बूल चर्बित मुख माहीं ।

कछु हसि २ तिन संग बतराहीं ॥३८८॥

लखि विलम्ब जननी सुधि आई ।
 रुख लख गज अवली चलिआई ॥३८६॥
 कबहुं मत्त गज चारिहु भाई ।
 चढ़ि कर गोपुर प्रबसहि आई ॥३८७॥
 कबहुं गज सावक अति लोने ।
 हौदा सबज रंग कोउ सौने ॥३८८॥
 कोउक अरुण कोउ सेत सुहाये ।
 भिन्न २ सब सखन चढ़ाये ॥३८९॥
 आप चढ़े गज सावक आछे ।
 भरत लखन रिपुहन तिन पाछे ॥३९०॥
 यहि विधि जबहिं राज मग आवैं ।
 बाल बृद्ध सब देखन धावैं ॥३९१॥

अर्थ—परम सुन्दर सुगंध युक्त ठंडा जल लाकर दासजनों ने श्री राघवजी के सहित भ्राताओं सखाओं के हस्त कमल प्रछालन कराये अर्थात् धुलाये ॥ ३८५ ॥

अनंतर कुछ अनेक प्रकार की रस मयी परम मधुर मेवा श्री रघुनाथजी के सामने रख दी तब श्री रघुनाथजी ने भ्राताओं सखाओं का रुख देख रुचि अनुकूल सबको मेवा दी ॥ ३८६ ॥

श्री कौशलानन्दवर्धनजी मेवादिकों को हस्त कमल में ले २ कर देते हैं और हंस २ कर सबकी ओर देखते हैं और नाम ले २ कर भाइयों सखाओं को बुलाते हैं ॥ ३८७ ॥

अनंतर कुछ मधुर मेवा को पा कर कुझा आचमनादि कर स्थापी से हाथ मुँह पोंछ सहित भ्राताओं सखाओं दे पान की बोरियां श्री मुख कमल में ले कर चर्वन करते हैं और फिर कुछ हँस २ कर भ्राताओं सखाओं से खेल संबंधी बातें करने लगते हैं (कि इन्होंने बोड़ा अच्छा फिराया, इनकी अमुक कला अति उत्तम रही इनका भी काम हास्य रहा इत्यादि न्यूनाधिक चातुरी की बातें) इसी प्रकार से कभी कोई, कभी कोई, कभी कोई बिहार हुआ करता है ॥ ३८८ ॥

आज अपर दिन से कुछ विलंब होगया है कि श्री राखवजी को अपनी माताओं का स्मरण हुआ कि मातायेंजी सब हमारी राह देख रहीं होंगी उनके यहां चलने का हमारा समय होगया है अतः हमको शीघ्र वहां पहुँचना चाहिये—यहां आपका माताओं के यहां पधारने का समय जान और आपका रख देख कर हँथवान हां थियों की अवली को साज कर आपके निकट लाये ॥ ३८९ ॥

कभी चारों राजकुमारजी मत्त हाथियों पर चढ़ कर गौ पुर दरवाजे से अर्थात् शहर पनाह शहर के भीतरी फाटक से अंदर शहर के प्रवेश करते हैं ॥ ३९० ॥

और कभी अति सुन्दर हाथियों के बच्चों पर जिन पर किसी पर सबज रंग का किसी पर सुनहले रंग का, किसी पर अरुण रंग का, किसी पर श्वेत रंग का अर्थात् अनेकों रंग के हौदे कसे हुये शोभा दे रहे हैं इन भिन्न २ गज सावकों पर श्री रघुनाथजी ने अपने सब निज सखागनों को आज्ञा देकर चढ़ाया ॥ ३९१-३९२ ॥

प्रथम अच्छे २ गज सावकों पर अपने सखावर्गों को चढ़ा कर आपने स्वयं एक सुन्दर गजसावक पर जिस पर परममधुर मणिजटित स्वर्ण मयी सुन्दर सिंहासन के बनाव वाला हौदा कसा हुआ है सवारी कीइ सी प्रकार श्री रघुनन्दनजी के दाहिने चायें पीछे श्री भरतलालजी

श्री लखनलालजी श्री रिपुहनलालजी गजसावकों पर आपकी सेवा में
उपस्थित हैं और इसी प्रकार इनके पीछे सखागनों के गजसावक हैं ॥३९३॥

इस प्रकार से जब श्री रघुनाजी की सवारी सहित समाज के
राज मग (राजद्वार के सड़क) में आती है तब पुरी के बाल, बृद्ध
लोग सभी श्री. सरकारी दर्शनानंद प्राप्ति हेतु शीघ्र मग की ओर दौड़ते
हैं ॥ ३९४ ॥

निज २ टहल काज बिसरावैं ।

कुँवर देख सब भाग्य मनावैं ॥३९५॥

ललना सकल अटारिन खरीं ।

वर्षत सुमन परम सुख भरीं ॥३९६॥

देख प्रीति प्रभु तिन तन हरें ।

तिनकी रुचि लखि अनुजन टेरैं ॥३९७॥

कोउ सखि खिरकिन ओसर ताकैं ।

आवत जान छिनहिं छिन भांकैं ॥३९८॥

दिग लखि फूल माल पहिरावैं ।

तेहि मिसु जनु निज अंक लगावैं ॥३९९॥

कोउ आरती निछावरि बारैं ।

कोउ बोरी प्रभु निकट पवारैं ॥४००॥

हित लखि प्रभु सो मुख में देहीं ।

लखि प्रभु शील बलैया लेहीं ॥४०१॥

कहैं कि जन्म जहां प्रभु देहू ।
 यह सुख हमहिं देहु करि नेहू ॥ ४०२ ॥
 हम परिजन तुम नृप सुत होहू ।
 यहि बिधि अचल करष प्रभु छोहू ॥ ४०३ ॥
 ऐसी बिधि ग्रह २ प्रभु देखहिं ।
 ललना जन्म सुफल करि लेखहिं ॥ ४०४ ॥

॥ दोहा ॥

राज द्वार तब आय करि, चढ़ि सुखपाल कृपाल ।
 भरत लखन रिपु दवन युत, सखन सहित रघुलाल ॥ ४०५ ॥

अर्थ—दर्शनानन्द प्राप्त हेतु पुरवासी अपना २ ग्रह कार्य छोड़ कर मग की ओर दौड़ते हैं और वह घर का काम उनको विस्मरण हो जाता है अर्थात् उसकी उनको जरा भी सुधि नहीं रहती—यहां आ कर मय साज समाज के सहित चारों कुँवरों को देख कर समस्त दर्शनाभिलाषी पुरवासी जन अपने २ भाग्य की सराहना करते हैं कि हम सब अति धन्य हैं कि जो इस तरह के दर्शन कर अपने नेत्र सुफल कर रहे हैं ॥ ३९५ ॥

पुरवासी ललनायें अपने २ गृह की अटारिन पर खड़ी हो २ कर आती हुई सवारी को देखती हुई समीप आने की राह देखती हैं और जब सवारी समीप आजातो है तो दर्शनानन्द के परम सुख में भर कर परम सुगंधित फूलों की पखुरीन की वर्षा करती हैं (क्योंकि दर्शन तो हुये पर अच्छी तरह से नहीं, जिससे ठीक तरह से दर्शन करने तथा श्री मुख की बाणी सुनने की इच्छा है सो पुष्प वर्षाती हैं जिससे कि श्री

रघुनाथजी ऊपर की ओर दृष्टि करें) ॥ ३९६ ॥

ऐसी अलौकिक प्रीति देख कर श्री जानराय, सुजान शिरोमणि अंतरजामी श्री रघुनाथजी उनकी इच्छा पूरा कर उनके प्रसन्नार्थ उनकी ओर निहारने लगते हैं और तिनकी वचन सुनने की अभिलाषा जान कर अपनी परम रमणीय मधुर बाणी से मंद २ मुसकाते हुये अपने भ्राताओं को बुलाने लगते हैं कि जिसको श्रवण गोचर कर अभिलाषनी ललनाओं को आनंद प्राप्त हो कर उनकी इच्छा पूर्ण हो ॥ ३९६ ॥

कोई सखियां सवारी का आगमन जान कर अपनी २ अटारियों की खिड़कियों से बैठी २ बार २ भाक रही हैं और अवसर (कि कब सवारी आवे और कब दर्शन हो) की राह देख रही हैं कोई सवारी बिलकुल निकट ही जोन छिन २ में झरोखों द्वारा बार २ भाकी भाकने के लिये भाकती हैं अर्थात् अति आतुर हो रही हैं (यह सब शृंगार रस वाली हैं ॥ ३९८ ॥

जो सखियां सवारी की राह देख रही थीं उन्होंने ने श्री प्राण प्यारे की सवारी निकट लख कर परम सुगन्धित फूल मालायें दूर से फेंक कर श्री रघुनाथ जी को पहिराईं भानी वे इसी फूल मालाओं द्वारा श्री प्राण प्यार को हृदय से लगा रहा हैं अर्थात् मानो उनका अकथनीय येम अथवा वे स्वयं गजरा रूप होकर श्री प्राण प्यारे स्याम सुन्दर जी को अपने हृदय लगाती हुई (अंक भरती हुई) स्वयं हृदय लग रही है । ऐसा आनंद वे प्राप्त कर रही हैं ॥ ३९९ ॥

कोई सखियां उन्हीं अटारियों पर खड़ी २ आरती निछावरि यथा विधि आनंदावेश में करती हुई बलैयां ले रही हैं कोई शृंगारावेशी सखियां श्री राघव जी के निकट पान बीरियां फेंकती हैं कि श्री प्राण बल्लभ जी इन्हें ग्रहण करें ॥ ४०० ॥

इन पुर बधुओं का ऐसा अपरमित अद्वितीय प्रगाढ़ प्रेम लख

कर उनकी पान बीरियों का अपने हस्त कमलों से लोक कर याती बिना पृथ्वी पर गिरे हीच में ही पकड़ कर उन सबके प्रेम प्रबोधनाथ श्री मुख कमल में दे चर्चन कर उनको प्रसन्न करते हैं और सखीगन श्री सरकार का प्रेम पूरित शील लख कर सब बलैयां लेने लगती हैं कि हमारे प्यारे को कहीं दोठ न लगजाय अथवा उनकी अरिप्रतिवारन कर (बलाय बलाय भाइ) अपने ऊपर लेती हैं ॥४०१॥

और सब सखियां अपने को धन्य मान कर ईश्वर से प्रार्थी होती हैं कि हे प्रभू हमारा जहां जन्म दीजिये तहां यह सुख हम सबके ऊपर कृपा कर के अवश्य दीजिये कि सो अगली चौपाई में देखिये ॥४०२॥

कि हम आप के परिवार और आप हमारे राज पुत्र होवें ताकि हम सब इसी प्रकार दर्शनानन्द प्राप्त करते रहें और आप के दर्शन की उत्कंठा हमारे हृदयागार में नित नवीन बढ़ती रहे और हमारे सब के ऊपर आप की इसी प्रकार अचल कृपा रहे और आप पर हमारा इसी प्रकार अविचल प्रगाढ़ स्नेह रहे ॥४०३॥

इसी प्रकार की रीति से श्री राघव जी मह २ प्रति पधार २ देख रहे हैं और रघुवशीललनाये श्री रघुवंशी महाराज कुमार को अवलोकन कर अपने २ जन्म को सुफल समझ रही हैं कि हम सब को धन्य है जो ऐसे श्री प्राण बल्लभ राघव जी के वंशीय होकर जन्मे हैं और इस दर्शनानन्द के भागी हुये हैं ॥४०४॥

इस प्रकार जब सवारी राज द्वारा पर आती है तब श्री कृपा सागर कृपा स्वरूप परम कृपाल श्री राघव जी सहित भ्राताओं सखाओं के हाथियों की सवारी से उतर कर सुखपाल आदि की सवारियों पर चढ़कर चलते हैं ॥४०५॥

॥ दोहा ॥

सिंह पौरि सह मंडली, बिदा किये बहु लोग ।
 प्रभु मूरति हिय धरि चले, शिर धरि लालनियोग ॥ ४०६ ॥
 कोउ २ निज कुल के सखा, असि प्रिय जानि कृपाल ।
 संग लिये सानुज चले, भरत मात गृह लाल ॥ ४०७ ॥
 सुनि आगे हौं आरती, साजि नयन फल लेत ।
 मणिगन भूषण जोचकन, बहुत निछावरि देत ॥ ४०८ ॥
 लखन मातु पहुँ जाय प्रभु, तिनहिं नयन फल देत ।
 सकल मातु द्रग सफलकरि, पुनिनिजजननिनिकेत ॥ ४०९ ॥

अर्थ—ज्योंही श्री राघवजी की सवारी सिंह पौरि दरवाजे पर पहुँचो त्योंही श्री रघुनाथजी ने जो अपर लोग अपनी मंडली के सहित सवारी में रहे उन सबको सहित बाहनादिकों के बिदा किया क्योंकि यहां से श्री राजकुमारजी महलों में पधारेंगे वह भी श्री प्रभू की आज्ञा पा कर उनकी सुन्दर स्याम मूर्ति अपने हृदय मंदिर में स्थापित कर आज्ञा शिरोधार्य कर यथा योग्य माथा नवाय जुहार कर अपने २ गृह को चले आये ॥ ४०६ ॥

इस सिंह पौरि से श्री रघुनाथजी पालको से उतर पड़े और यहां से सब सखागन को बिदा किया और उन सखागनों को जो इनके चचेरे भ्रातागन हैं अर्थात् जो अति प्रिय सखागन हैं और निज वंशीय हैं उनकी परम कृपाल श्री राघवजी संग में लिये हुये सहित अपने तीनों भाइयों के प्रथम श्री भरतलालजी की माता अर्थात् श्री कैकेई अम्बा के महलों में पधारें ॥ ४०७ ॥

उधर श्री अम्बाजी पहले से ही राह जोड़ रही थी और अपने सहचरियों द्वारा पता लगाये ही थी कि सुन कर कि श्री बड़े लातजी पधार रहे हैं तुरंत सब पहले से तैयारी थी ही अतः अम्बाजी ने शीघ्र सजी सजाई आरती लेकर स्वागतार्थ आगे आकर विधि पूर्वक आरती की और बड़े आनन्द पूर्वक दर्शन किये अर्थात् नेत्रों का फल प्राप्त किया और नाना प्रकार के मणिगन भूषणादिक श्री राघवजी की छवि पर न्योछावरि कर २ याचकन को दिये ॥ ४०८ ॥

इसी प्रकार श्री लखनलातजी की माता श्री सुमित्रा अम्बाजी के यहां जा कर श्री रघुनाथजी अपने दर्शन दे उनके नेत्र सुफल करते हैं और यहां भी अम्बाजी उपरोक्ताद्वारा विधि पूर्वक आरती न्योछावरि करती हैं इसी प्रकार सब माताओं के नेत्रों को सुफल कर श्री राघवजी अपनी माता श्री कौशल्या अम्बाजी के सहजों में सादर आताओं सखाओं के पधारते हैं ॥ ४०९ ॥

चौ०—जब कौशल्या सुनै सुत आयै ।

आरती साज सौज मगवाये ॥ ४१० ॥

अति स प्रेम हो आरति कीन्हीं ।

अनुज सखा युत समहित चीन्हीं ॥ ४११ ॥

आनि भवन सनमानि दुलारे ।

निज अंचल मुख कमल सुधारे ॥ ४१२ ॥

भारि पोछि शिशु बदन विलोकत ।

पयद श्रवत छिन २ तिन रोकत ॥ ४१३ ॥

प्रेम विवस तन सुधि तेहि नाहीं ।

अंतर हित लखि प्रभु मुसकाहीं ॥ ४१४ ॥

निज कर कछु मेवा पकवाने ।

भांति २ धरि थारन आने ॥४१५॥

कहति वच्छ कछु अनुजन देह ।

कछु सहचर कछु आपहु लेहू ॥४१६॥

पावहु कहि मुख चुम्बति माता ।

षार २ कहि पावहु ताता ॥४१७॥

जननी रुख लखि भरत हँकारे ।

भोजन दिये दिये सुख भारे ॥४१८॥

सखन सहित बैठे इक थोरी ।

पावत हँसत करत किलकारी ॥४१९॥

॥ दोहा ॥

छवि लखि मातु न देह सुभि, खेसन चले जु राम ।

संग अनुज लिये सखागण, शकल विश्व अभिराम ॥४२०॥

अर्थ—जब कौशल्याजी ने अपने सहचरियों द्वारा सुना कि दत्त राघव अपने धाताओं सखाओं सहित आ रहे हैं तब तुरंत आरती सोज कर तथा आरती विधान की समग्र सामग्री सहित मँगवाई ॥४२०॥

और आगे जाकर श्री रामलालजी की अति प्रेम के साथ सुन्दर आरती की और जिस प्रकार बड़ों लाल साहब की आरती की उसी प्रकार बराबर सम भाव से परम प्रेम पूर्वक आपके अनुज प्रिय सखाओं की आरती की (क्योंकि अम्बाजी का वात्सल्य सब पर बराबर है ॥४२१॥

विधि पूर्वक आरती कर श्री अम्बाजी ने सबको भीतर भवन के ले जा कर सुन्दर आसनासीन करा कर नाना प्रकार से दुलार कर सनमान किया कि अपने आंचल के छोर से श्री प्यारे लालों के मुख-कमल पोंछ सुधोर कर सम्हारे अर्थात् सुधोरती हैं सम्होरती हैं ॥ ४१२ ॥

और वस्त्रों को भार मुखकमलों को पोंछ प्रिय पुत्र के मुखकमल को अवलोकन करने लगती है अति वात्सल्य प्रेम बस जब आपके स्तनों से पय श्रवित होने लगता है तब आप उसको रोकने लगती हैं अर्थात् छिन २ में वात्सल्य रस में छकी उसको रोकती हुई पोछने लगती हैं ॥ ४१३ ॥

श्री अम्बाजी ऐसे प्रेमोन्मत्त हुईं कि उनका अपने शरीर का भी भान न रहा इस प्रकार वात्सल्य रसावेशी अर्थात् श्री अम्बाजी केहृदय को अपार प्रेम देख कर अंदर की जान लेनेवाले अर्थात् अंतर-यामी सुजान शिरोमणि श्री दाधवजी मंद २ मुसकाते हैं ॥ ४१४ ॥

अनंतर श्री अम्बाजी ने अपने कर कमलों से कुछ मेवा पकवान नाना प्रकार के (भांति २ के) सुन्दर थारों में लगा कर प्यारे लालों के सन्मुख रखदिये ॥ ४१५ ॥

और श्री अम्बाजी कहती हैं कि हे वत्स रामलालजी अपने हस्त कमलों से अपने भ्राताओं को भी कुछ दीजिये कुछ प्रिय सखाओं और सहचरों को भी दीजिये और कुछ आपहूँ मेवा पकवान ग्रहण कीजिये ॥ ४१६ ॥

फिर कहती हुईं कि प्रिय वत्स पाइये मेवा पकवान जो इच्छा हो पाइये श्री मुख कमल को प्रेम से चुंबन करती हैं श्री रघुनाथजी श्री अम्बाजी के प्रगाढ़ प्रेम को देख सिथल हो रहे हैं अर्थात् मग्न हो हो जाते हैं तब श्री अम्बाजी बार २ कहती हैं कि हे प्यारे लालजी पाइये बहुत विलंब हो गया है हे तात पाइये इत्यादि ॥ ४१७ ॥

श्री रघुनाथजी ने माता का रुख देख कर कि माता की इच्छा है कि लालजी कुछ पावें । आपने तुरंत ही भरतादि भ्राताओं को बुलाया और भोजन करके माताको अति सुख दिये ॥ ४१८ ॥

कैसे सुख दिये कि आप सब भ्राताओं सखाओं के एक ही थारी में (थार में) भोजन करने के लिये बैठ गये और चारों भ्राताओं ने सहित सखाओं के किलकारों मार २ हँसते हुये (परस्पर हँसते हँसाते हुये) श्री अम्बाजी के परम प्रेम मयी मेवा पकवानों को थोड़ा २ पाकर उनको वात्सल्य रस का अनूपम आनंद दे कर भारी सुख दिया ॥ ४१९ ॥

श्री महाराज किशोर प्यारे लालजी की परम मनोहर छवि को अवलोकन कर श्री कौशिल्या अम्बाजी को अपने तन की सम्हार (सुधि) अर्थात् सुरत नहीं है यानी प्रेम में वे सुध हो रही हैं इधर श्री राघवजी माता को सुख देने के लिये श्री अम्बाजी के महल में ही कुछ खेखने की इच्छा करने लगे और अपने समस्त भ्राताओं सखाओं सहित सम्पूर्ण विश्व को विश्राम देने वाले और जगत भर को अपनी लीला द्वारा परम सुख देने वाले सकल विश्व सुख दाता श्री कौशिल्यानन्द-वर्धन श्री सुन्दर श्याम खेलने को चले ॥ ४२० ॥

चौ०-कहुँ चढ़ि अटन पतंग उड़ावत ।

अनुज सखन उर मोद बढ़ावत ॥ ४२१ ॥

चख चंचल कर तिन तन हेरत ।

अर्द्ध उर्द्ध दिशि त्रिदिसिन्ह फेरत ॥ ४२२ ॥

अनुजन सखन प्रचारि प्रचारी ।

मोरि २ ग्रीवा भुज भारी ॥ ४२३ ॥

चंग ते चंग लरावत काटत ।

हारिहु परे निळावरि बांटत ॥ ४२४ ॥

॥ दोहा ॥

ब्रह्मादिक सुर यान चढ़ि, लखि पतंग प्रभु होथ ।
तुजसो सुमन सुगंध श्रग, अर्चित नावत साथ ॥ ४२५ ॥
पुनि संध्या को समय लखि, अनुजन आयुसु दीन ।
सखन विदा करि मातु ग्रह, संध्या बंदन कीन ॥ ४२६ ॥
जबते प्रभु पितु निकट कहँ, आय करत पुर काज ।
सियनिग गुरु मुनि तियन युत, परिजनबुवनसमाज ॥ ४२७ ॥

अर्थ—कहीं अटारियों पर चढ़ कर पतंग उड़ा २ कर अपने भाइयों सखाओं के हृदयों में आनंद बढ़ाते हैं अर्थात् उनको पतंगों की कलायें बतला २ अथवा दिखा २ कर उनको बाहर भीतर से खुशी करते हैं ॥ ४२१ ॥

और नेत्रों को चंचल करके श्री रावजी अपने सखाओं आता-ओं और पतंगों की ओर देखते हैं और अपनी पतंग को नीचे की ओर गोट (पतंग को नीचे करना) खबाते हैं और फिर ऊँचे तुरंत खेंच कर ले जाते हैं कभी मोड़ कर इधर उधर दिशि विदिशि को पतंग फेरते हैं और अति शीघ्रता पूर्वक छिन मात्र में पतंग घुमा लेते हैं ॥ ४२२ ॥

और अपने भाइयों सखाओं के नाम ले २ कर पुकार २ कहते हैं कि देखो अपना पतंग बचाना हम तुमारा अभी काटते हैं और अपनी सुन्दर गर्दन को माड़ २ अपने आजानु बाहुओं द्वारा पतंग से पतंग

लड़ाने के लिये अपनी पतंग को दूसरी पतंग के पास ले जाते हैं ॥ ४२३ ॥

श्री रघुनाथजी पतंग से पतंग लड़ाते हुये काटते कटाते हैं और अपने हारने पर अपने आताओं सखाओं के जीतने पर आप स्वयं न्योछावरि अर्थात् इनाम बांटते हैं कि आज हमारे माई सखा हमसे जीते इसी प्रकार समस्त आता सखागत भी अपनी जीत देख सकुचाते हुये अपने हारने पर और श्री राघवजी के जीतने पर इनाम बांटते हैं कि आज हमारे प्राण जीवन राघवजी की जीत हुई ॥ ४२४ ॥

ब्रह्मादिक अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु महेश समस्त देवताओं के सहित अपनी पत्नियों के साथ आकाशमाग से श्री कौशल किशोरजी के कर कमलों में पतंग अवलोकन कर अर्थात् श्री रघुनाथजी को पतंग चढ़ाते देख तुलसी, फूलों की परम सुगंधित मालायें चंदनादिक की वर्षा करते हैं मानो वह आकाश से आपकी सुन्दर फूल मालाओं और तुलसी चंदनादिक से आपका पूजन करते हैं और आपकी स्तुति कर मत्था नवाते हैं समस्त देवता कह रहे हैं कि देखो जिनका दर्शन हम सब तक को भी अति दुर्लभ है सो प्रभू अपनी अहेतु की करुणा कृपा द्वारा सृष्ट्युलोक में कैसी मनोहारिनी दृष्टि लीला संयुक्त भक्तों के प्रेम पक्ष दर्शन दे रहे हैं ॥ ४२५ ॥

और जब खेलते २ संध्या का समय होगया तो सन्ध्या बंदन का समय देख कर श्री रघुनाथजी ने अपने आताओं का आज्ञा दी कि हे भाइयो अब सन्ध्या बंदन का समय हो गया है आप लोग सब अपने २ सुस्थानों में जाकर सन्ध्या बंदनादि नित्य कर्म कीजिये और फिर इसी तरह अपने प्रिय सखाओं को भी विदा किया इस तरह सब को विदा कर श्री कौशल्या अम्बाजी के महलों में ही आप ने सन्ध्या बंदन की ॥ ४२६ ॥

जब से श्री स्याम सुन्दर (श्री रघुनाथ जी) श्री कनक भवन से श्री चक्रवर्ती जी के पास पधारे और समस्त लीलायें कर समस्त पुर बाशियों को सुखी कर पुर बीथियों में, हय, गय शालादिकों में और नाना प्रकार के खेलों तथा बाग बिहारादि को में फिर के श्री अंबा जी के महलों में जाकर सबको धिदा दे स्वयं संध्याबंदन की कि इतने में इनको आधायाम व्यतीत हो गया—वहां श्री कनक भवन के अंतः पुर के सर्वताष में श्री मिथिलेश राज दुलारी जी के निकट श्री गुरुतिय अर्थात् श्री अरुनधती जी श्री अवधबासी मुनि तियन के सहित आई और श्री राधव जी को श्री चक्रवर्ती जी के यहां पधारने पर अपना समय जानकर श्री रघुबशी कुल की और निज परिवार की महिलाओं की समाजें श्री सिया जी के पास आने लगीं । (यहां से फिर श्री स्वामी नाभा जी जहां से आपने शृंगार रस छोड़ा था वहीं आप फिर उसका मिलान करते हैं) ३०० छन्द से आगे देखिये॥ ४२७ ॥

चौ०-गुरु तिय सखन आगमन जानी ।

सिय सादर उठि बहु सनमानी ॥ ४२८ ॥

आसन दोन्ह विनय बैठारी ।

अति प्रसन्न सिय बदन निहारी ॥ ४२६ ॥

पूज्य यथा विधि भाग्य सराहत ।

बार २ ते सिय मुख चाहत ॥ ४३० ॥

करत परस्पर विनय बड़ाई ।

निज २ भांति प्रीति अधिकार्ड ॥ ४३ १ ॥

पुर तिय कहत सुनहु वैदेही ।

तुव दर्शन उर प्रीति न केही ॥ ४३२ ॥

आठ याम हम युग सम बितवत ।
 तुव हवि आन हृदय मग चितवत ॥४३३॥
 जब लग लखत न विधु मुख तेरो ।
 उर धोरज नहि आवत मेरो ॥४३४॥
 भानुवंश तुम कीन्ह उजागर ।
 तुव बस रहत राम नय नागर ॥४३५॥
 तुहि सम भाग्यवंत नहि दूजी ।
 लखि तुय बदन आज मम पूजी ॥४३६॥
 नृप विदेह बहु विधि तप कीन्हा ।
 जोग भोग करि आत्म चीन्हा ॥४३७॥
 तिन्ह कर सुकृत विधातौ दीन्है ।
 करनी से सतगुण फल लीन्है ॥४३८॥
 धन्य २ तुव पितु अरु माता ।
 धनि तुम्ह चारि कुंवरि सुख दाता ॥४३९॥
 हम उर प्रीति बढ़त अति पावनि ।
 बालक ज्यों निज गोद खिलावनि ॥४४०॥
 अवध सकल तुव दरश प्रकाशी ।
 हमहूँ भई सुकृति की राशी ॥४४१॥

अर्थ—श्री सीता जी ने श्री गुरु पत्नी श्री अरुघतीजीको
 श्रुतियों के साथ और रघुवंशकुल बधून निज सखियों का आगमन

देख उठकर आदर पूर्वक सबको यथोचित बहु प्रकार से सन्मान देकर स्वागत किया ॥ ४२८ ॥

और सबको आसन दे नम्रता पूर्वक विनय कर बैठाया—श्री गुरु पत्नियाँ तथा और समस्त ललनायें श्री मिथिलेश राज नंदिनीजी के परम सुन्दर मुखारविन्द को निहार कर (दर्शन कर) परम प्रसन्न हुई ॥ ४२९ ॥

श्री सियाजी विधि पूर्वक गुरु पत्नियों का पूजन करके अपने भाग्य की सराहना करती हैं (कि हम आज बड़े भाग्यी हैं जो आपके दर्शन पर्शन हुये इत्यादि) और यहां श्री सियाजी चरण स्पर्श करती हुई भाग्य मना रहीं हैं वहाँ समस्त गुरु मुनि तियजन श्री किशोरीजी का बारंबार मुखारविन्द निहार २ देखती हैं अर्थात् इनके नेत्र वृत्ति को नहीं प्राप्त होते अथवा बारंबार अबलोकन करती हैं जिससे पूर्णतया दर्शन न होने के कारण (ये बार २ आपके निःकलंक मुख मयक को अवलोकन करना चाहती हैं) ॥ ४३० ॥

परस्पर विनय बढ़ाई हो रही है अपनी २ प्रीति की अधिकता बढ़ती जा रही है अर्थात् श्री सियाजी अति नम्रता पूर्वक विनय करती हुई विनय प्रीति से नहीं अघाती, उसी प्रकार गुरु मुनि पत्नियाँ अपनी २ ओर से मर्यादा से अधिक प्रशंसा करती हुई उससे नहीं अघाती ॥ ४३१ ॥

श्री वैदेहीजी से पुर वधुयें कहती हैं कि हे श्री सियजू भला कहिये तो ऐसा कौन होगा जिसके हृदय में आपके दर्शनों की प्रीति न हो ॥ ४३२ ॥

हम सबको आठौ याम युग के समान व्यतीत होते हैं और आपकी अनूपम छवि को हृदय में धारण किये सदैव आपके दर्शनों की राह देखा करते हैं अर्थात् आपके दर्शन बिना आठ याम हमको

युग के समान कटते हैं ॥ ४३३ ॥

हे किशोरीजी जब तक हम आपके चन्द्रमुख का दर्शन नहीं पाती हैं तब तक हमारे हृदयमें धीरज नहीं आता है अर्थात् आपके दर्शनों बिना अधीर बनी रहती हैं ॥ ४३४ ॥

आपने (श्री सियजीने) श्री सूर्यवश को उजागर (प्रकाशित) कर दिया है और सब प्रकार की नीतिमें निपुण परम प्रवीण श्री राघव जो स्वयं आपके बस में रहते हैं ॥ ४३५ ॥

हे सियजू आपके समान भाग्यवान कोई दूसरी ललना नहीं है, आपके सुन्दर अकलंक चन्द्र मुखारविन्द को देख कर हम सबकी आशा (अभिलाषा) पूर्ण होगई ॥ ४३६ ॥

श्री जनकजी महाराज ने बहुत प्रकार से महान् तप किया और योग युक्ति से भोग करके आत्मा को पहिचान लिया अर्थात् अपने निज स्वरूप को लख लिया (योग युक्ति द्वारा चित्तकी निरोध वृत्ति से भोग भोगते अपरमित आनन्द भोगादिकों से निर्लेप रह कर अपनी आत्मा का साक्षात्कार किया) ॥ ४३७ ॥

तिस महान् तपस्या का अर्थात् सुकृतेों का फल बिधाता ने भी खूब दिया कि अपनी करणी से सो गुना ज्यादा फल श्री महाराजजी ने आपको प्राप्त किया ॥ ४३८ ॥

हे श्री किशोरीजी आपके माता पिता को धन्य है और आप चारों पुत्रियों को धन्य है जो परम सुखदाता हो अर्थात् आप सब अपने परिजन, माता पिताओं, तथा पतियों को परम सुख की देनेवाली हुई हो ॥ ४३९ ॥

हमारे सबके हृदय में अति पवित्र प्रीति बह रही है कि जैसे परम मनोहर निज बालक को देख निज गोदमें लेने व खिलाने की प्रीति माता पिताओं की होती है। इस प्रकार आप चारों कुंवरी को अपनी गोदी में लेकर खिलाने की प्रीति हमारे हृदयों में बढ़ती रहती है केवल हमारी ही नहीं समग्र अयोध्या आपके दर्शन से प्रतो-
षित हो रहा है (आनंद से भर रहा है) ॥ ३४०॥

और इसी प्रकार हम सभी परम आनंद में भर रहे हैं और समान सुकृती नहीं सुकृत की रास हो रहे हैं (यानी आपके नाते से हमहूँ सब सुकृती की राशी हो गई हैं) जो आपका दर्शन कर रहे हैं और की तो बात ही क्या ॥ ३४१ ॥

चौ०-अंड कोटि को नायक जो है ।

तुव बस रहत सदा प्रभु सोहै ॥ ४४२ ॥

तुव मूरति तिन्ह हृदय बसाई ।

स्यामल अंग अधिक छवि पाई ॥ ४४३ ॥

जब कहूँ हँसत प्रगट हूँ आवत ।

अवर मृदि बहु भांति छिपावत ॥ ४४४ ॥

तेरी प्रीति मत्त भयो डोलत ।

ते नित बदन समय मिसु खोजत ॥ ४४५ ॥

हमरी खोर जो आवत कबहीं ।

चढ़ि धौरहर लखत ह न तवहीं ॥ ४४६ ॥

यहि विधि सियहि प्रशंसित वामा ।

युगल प्रीति वर्णत अभिरामा ॥ ४४७ ॥

॥ दोहा ॥

पुनि धरि धोरज भवन कहँ, गवन करत सुख पाय ।
निज मन अभिलाष युत, देत अशीश अघाय ॥ ४४८ ॥

अनंत कोटि ब्रह्मांड नायक श्री राघवजी सदा आपके बस हो
रहते हैं अर्थात् बस में हैं आपके प्रेम के आधीन हैं ॥ ४४२ ॥

जिन श्री राघवजी ने आपकी मूर्ति को अपने हृदय में बसा
रखी है जिस मूर्ति को पाकर श्री राघवजी का स्यामल तन अधिक
धुबि वाला होगया है यह कैसे जाना ? सो कहती हैं कि:- ॥ ४४३ ॥

जब कहीं कभी श्री राघवजी हँस उठते हैं तो बह आपकी हृदय
में बसी हुई मूर्ति प्रगट होजाती है तब वह अथरों को बंद करके उस
मूर्ति को बहुत प्रकार से झिपाते हैं कि इस भेद को कोई न जानले ॥ ४४४ ॥

हे विदेहराज दुलारीजी आपकी प्रीति में मत्त हो कर श्रीराघवजी
चलते हैं (डोलते फिरते हैं) श्री राघवजी मंद २ चाल चलते हैं आपकी
प्रीति में ही मत्त हो रहे हैं इससे मंद २ डोलते चलते हैं क्योंकि आपको
हृदय में रखने से उनको अति उन्मत्तता आ गई है इससे अपना मुख
कमल समय पाकर प्रयोजन मिसु से ही खोलते हैं और आपको झिपाये
रहते हैं इत्यादि ॥ ४४५ ॥

और जब कभी हमारी खोर (मार्ग) से आकर हमारे दरवाजे
से निकलते हैं तो हम आती २ अटारियों पर चढ़ कर देखते हैं कि
जब श्री राघवजी हँसते हैं तब आपका प्रकाश उनके मुखारविन्द से
पशने लगता है तिसकी वे तुरंत मुख कमल बन्द कर झिपा लेते हैं
हम जानती हैं (इस बात को हमही जानती हैं) ॥ ४४६ ॥

इस प्रकार से श्री सियजी की समस्त ललनायें प्रशंसा करती हैं

और श्री युगल प्रीति को वर्णन करती हैं और आनंद प्राप्त करती हैं
॥ ४४७ ॥

अनंतर अपने २ हृदयों में प्रेम संबंधी धीरज धारण कर (क्योंकि
बिलगता इनको असह्य है पर समयानुसार व्योहार करना ही पड़ता है)
अपने २ स्थानों को गमन करती हैं और अपनी २ रुचि अनुकूल प्रेम
संबंधी आशीर्वाद देती हुई बिदा होती हैं ॥ ४४८ ॥

चौ०—यहि बिधि ललना आवत जाता ।

अधिक भोर छिन २ अधिकाता ॥ ४४९ ॥

जाम एक तेहि भवन बितावत ।

पुनि युत कुँवरि सासु ढिग आवत ॥ ४५० ॥

संग सखी सब साज सुधारैं ।

कोऊ व्यजन चामर शिर ढारैं ॥ ४५१ ॥

सासु निकट आवत सिय जबहीं ।

महल २ उपजत छबि तबहीं ॥ ४५२ ॥

चरण लागि कर आशिष पावहिं ।

सुख लहि हिय आनंद बढ़ावहिं ॥ ४५३ ॥

भिन्न २ सब चरणन लागत ।

बख समाज जननी अनुरागत ॥ ४५४ ॥

बैठारत आशिष दे तबहीं ।

यथा योग दे आसन सबहों ॥ ४५५ ॥

माता सियहिं गोद बैठारत ।

चारहु बधू हरषि उर लावत ॥ ४५६ ॥

सिय सासुन प्रति सुख उपजावत ।

मन बांछित आशिष तिन्ह पावत ॥ ४५७ ॥

सिय मुख निरखत अति हर्षावहिं ।

परम प्रीति राखहि सब पावहिं ॥ ४५८ ॥

मेवा सखिन गोद भरि देहीं ।

सरस अनेक भांति जेहि तेहीं ॥ ४५९ ॥

बीरी खात आशिषा पाये ।

यहि विधि सबके नैन जुड़ाये ॥ ४६० ॥

॥ दोहा ॥

कौशल्या ढिग समय कछु करि बिनती मन हारि ।

दिन गत लखि पुनि बिदा उठि, मांगत समय निहारि ॥ ४६१ ॥

अर्थ—इसी प्रकार श्री सियजू के पास ललनाये आतीं जातीं हैं अर्थात् बहुतसीं दर्शनों को आतीं हैं और बहुतसीं दर्शन कर बिदा हो जातीं हैं और इस प्रकार श्री मिथिलेश दुलारीजी के समीप छिन २ में अधिक भीड़ बढ़ती जा रही है ॥ ४४९ ॥

इसी मिलने मिलाने में श्री किशोरीजी का एक याम समय श्री कनक भवन में ही व्यतीत हो जाता है अनंतर अपनी बहिनों के साथ श्री सियाजी सब सासुन के यहां पधार कर अंत में कौशल्या अम्माजी के यहां पधारती हैं ॥ ४५० ॥

श्री सीताजी के संग में बहुत सी सखियां अनेकों प्रकार की सुन्दर साज धारण किये अपनी २ सेवा में उपस्थित हैं कोई व्यजन कोई चवैर इत्यादिक करती हुई शोभित हैं ॥ ४५१ ॥

श्री सियाजी समस्त माताओं के महलों में जाकर अपने दर्शन दे अथवा उनको नयन फल दे सुखी करती हैं और वहां आती छवि परम प्रकाशित हो सब महलों का प्रकाशित करती हैं अर्थात् आपके पधारने से महलों में एक परम रमणीयता प्रगट होती है और चारोंओर अति सुहावना प्रतीत होता है इत्यादि ॥ ४५२ ॥

श्री विदेहराजनंदनीजी सासुन के चरणों में लग कर (प्रथक २ सबके महलों में जाकर) सुन्दर अशिवें पा हृदय में आनंदित हो परम सुखी होती हैं ॥ ४५३ ॥

इसी प्रकार श्री सियाजी सहित अपनी बहिनों के भिन्न २ सब माताओं के यहां जा कर भिन्न २ चारों कुँवर आती समाज सहित माताओं के चरण लगती हैं और आशीर्वाद पाकर मन में अति प्रसन्न होती हैं और मय समाज अपनी बहुआं का चरण स्पर्श करते हुये देख कर समस्त माताओं के हृदय पंकज प्रकुलित हो पारमानंदित होते हुये प्रेम से धिहल हो जाते हैं ॥ ४५४ ॥

श्री अम्बाजी अति प्रेम से सबको आशीष दे यथायोग्य आसन पर बैठने के लिये कह कर सबको आसनों पर बिठाती हैं ॥ ४५५ ॥

और चारों बधुओं को बार २ हृदय से लगा कर श्री कौशल्या अम्बाजी श्री सियजू को गोदी में बैठाते सब पर अति वात्सल्य करती हैं ॥ ४५६ ॥

श्री सियजू अपनी समस्त सासों के यहां जाकर उनके सुख उपजाने वाले आचरण करती हैं अर्थात् जिसमें वे प्रसन्न हों वही करती हुई उनके हृदयों में सुख उत्पन्न करती हैं और इच्छानुकूल उनसे आशीर्वाद पाती हैं ॥ ४५७ ॥

और समस्त मातायें भी श्री सियजी का मुख कमल देख कर अति प्रसन्न हो अति हर्ष सुख को प्राप्त होती हैं और श्री सियजी भी उनसे परम प्रेम से व्यवहार करती हुई प्रीति रखती हैं अर्थात् उनके प्रेम का स्वयं प्रेम द्वारा अच्छा बदला देती हैं और जो माताओं ने दिया उसे अति हर्ष पूर्वक पाती हैं ॥ ४५८ ॥

श्री अम्बाजी श्री सियजू, उनकी तीनों बहिनों तथा समस्त समाज की सखियों धी गोरी में अर्थात् आंचल में (सुहाग सूचक खोइछा में) अनेकों भातिन के रसमयी सेवयें अतियं म के साथ पाने के लिये भर देती हैं ॥ ४५९ ॥

और अम्बाजी के प्रेम प्रबोधार्थ थोड़ा २ मेवा पान कर आप जहां २ सासुन के यहां जाती हैं तहां २ बीरी इत्र इत्यादिक सकारों को ग्रहण कर सुन्दर आशीर्वाद प्राप्त करती हैं (जब तक मातायें इनको नहीं देखती तब तक सबके नेत्र तड़फड़ाये रहते हैं) अतः दर्शन देकर इस प्रकार उनके नेत्रों को सीतल करती हैं अर्थात् आनन्दित करती हैं ॥ ४६० ॥

अनंतर श्री कौशिल्या जी के महलों में पधार कर यहां कुछ देर ठहरती हैं और परम विनीत भाव से मनकां हरने वाली विनय करती हैं क्योंकि दिन गत होगया रात्रि आरंभ हुई अतः कनक भवन चलने का समय विचार उठ कर श्री अम्बाजी से महल जाने की आज्ञा मांगती हैं आज्ञा मांगने पर कभी तो अम्बाजी अति वात्सल्य युक्त दुलार कर आज्ञा देदेती हैं और आशीष दे बिदा करती हैं (प्रथक २ आरती करना तो नित्य ही है) परन्तु कभी २ ॥ ४६१ ॥

॥ दोहा ॥

कबहुं मातुद्रग सफल हित, प्रभु ढिग सिय बैठारि ।
करत निछावरि आरती, जोरीसहितनिहारि ॥ ४६२ ॥

व्यारी मिसु अभिलाष कर, जननी राखत रोकि ।
चारि कुँवर चारिहु बधू, छिन २ छवि अवलोकि ॥ ४६३ ॥

चौ०—समय जानि करवावहिं व्यारी ।

यथा योग्य बहु भांति सुधारी ॥ ४६४ ॥

तहँ ते कनक भवन प्रभु आवत ।

निज २ भवनन अनुज पठावत ॥ ४६५ ॥

कबहुं सन्ध्या बंदन करिके ।

पैशाला आवत चित धरिके ॥ ४६६ ॥

परम रुचिर बैठक शुभ सोहीं ।

कंचन मंच चौकियां जोहीं ॥ ४६७ ॥

॥ दोहा ॥

सीय सासु सों बिटाहँ, आवत पय ग्रह माहिं ।

परिकर युत प्रभु बदन लखि, पद बंदना कराहिं ॥ ४६८ ॥

जननी व्याखू साज सजि, सामा गनी न जाहि ।

कनक थारि भरिहेत अति, पठवत पय ग्रह माहि ॥ ४६९ ॥

अर्थ—कभी श्री अम्बाजी श्री राघव जी के पास अपने नेत्रों को आनंद देने के लिये अथवा नेत्र सफल करने के लिये श्री सियजू को बैठाकर जोड़ी सहित दर्शन करती हैं और बिधान पूर्वक आरती अर्घादि स्वापी फेर पुष्पांजलि वर्षा कर नानाप्रकार के मणि भूषण न्योछावरि करती हुई इकटक नेत्रों से देखती हुई तन्मय हो जाती हैं ॥ ४६२ ॥

और कभी इस इत्ता से कि चारों कुमार चारों बहुओं सहित यहीं व्यारी करें ऐसी अभिलाषा रख कर व्यालू के बहाने श्री अम्बा जी सबको ठहरा लेती हैं और छिन २ में बार २ कभी बहुओं की ओर कभी कुमारों की ओर देख २ कर देखने से नहीं अघाती हैं अर्थात् उनकी छबि को देख २ कर तृप्ति नहीं होती, चाहती हैं कि सदैव देखा करें (ऐसी अनूप जोड़ियां हैं नेत्रों से विलग करने को जी नहीं चाहता) ॥ ४६३ ॥

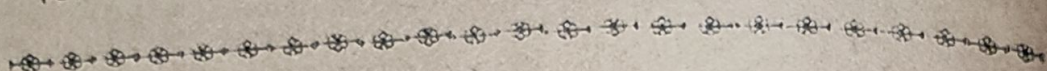
फिर व्यालू का समय जान कर श्री कौशिल्या अम्बाजी चारों पुत्रों को चारों बहुओं सहित यथा योग्य व्यालू की समग्र सोमग्री अनेकों प्रकार की सुन्दर परोस कर सबको व्यालू कराती हैं और फिर आचमन कराय यथोचित सन्मान सत्कार कर ताम्बूलादिक दे परम वात्सल्य कर विदा करती हैं और अपने २ महलों के जाने की आज्ञा देती हैं ॥ ४६४ ॥

यहां से कभी तो श्री सियजी के साथ श्री राघवजी श्री कनक भवन को आते हैं और अपने भाइयों को भी निज २ महलों के जाने की आज्ञा देते हैं जो अपनी पत्नियों के सहित अपने २ स्थानों में पधारते हैं—और कभी २ ॥ ४६५ ॥

श्री अम्बाजी के महलों में सन्ध्या बंदनादि कर श्री अम्बा जी की आज्ञा लेकर आनंद पूर्वक चित्त में श्री सियजी के मिलन का स्मरण करते हुये श्री राघवजी पयशाला में आते हैं ॥ ४६६ ॥

वहां पय शाला में परम सुन्दर बैठका सुशोभित होरहा है तिसके बीच रतन जड़ित कंचन की चौकियां हैं जिन पर मंच अर्थात् आराम कुर्सियां पड़ी हुई हैं तिन पर जाकर श्री राघवजी बिराजते हैं ॥ ४६७ ॥

वहां श्री जनक नंदिनी जी श्री कौशिल्या अम्बा जी से विदा हो कर मय परिकरों के पयशाला में आती हैं और यहां परिकरों



सहित श्री प्राण बज्रम जी का परम सुन्दर मुखारविन्द लख कर चरण कमलों को सहित परिकों के बंदना कर यथाचित वाम भाग में विराज मान होजाती हैं और समस्त परिकर अपनी २ सेवा में उपस्थित रहते हैं ॥ ४६८ ॥

वहां श्री कौशिल्या अम्बा जी नित्य व्यालू की समस्त सामग्री साज करके और नाना प्रकार सरस सजौनी वस्तुओं को सजि कर जो गिनी नहीं जा सकतीं पय शाला में सुन्दर स्वर्ण थारों में भर २ कर रोजती हैं जो व्यालू कुंज में श्री प्राण प्यारेन के व्यालू हेत रक्खी जाती है ॥ ४६९ ॥

चौ०—तब तह लाल बियारी करहीं ।

सिय परसत उर आनद भरहीं ॥ ४७० ॥

सुरभी युत पय सिता मिलायो ।

पय ग्रह सखिन सो विविधि बनायो ॥ ४७१ ॥

कनक कटोरन धरि प्रभु नीरे ।

भांति २ सुगंध युत छीरे ॥ ४७२ ॥

विनय करत आनंद रस बाढो ।

चँवर बिजन ले चहुँ दिशि ठाढ़ी ॥ ४७३ ॥

तिन हिय रुचि लख पय प्रभु लेहीं ।

निज करते परिकर कहं देहीं ॥ ४७४ ॥

यह विधि बहुत भांति सुख करिके ।

निज मंदिर आवत चित धरिके ॥ ४७५ ॥

चढ़ि सुख यान बिचित्र सुहाये ।
सिय युत नृत्य शाल तब आये ॥ ४७६ ॥
तह की त्रिय तुरंत सब आई ।
भांति २ शृंगार बनाई ॥ ४७७ ॥

॥ दोहा ॥

करि जुहार महि माथ धरि, बदन बिलोकन कीन्ह ।
तब प्रभु प्रगटन चातुरी, तिन्ह कहँ आजादीन्ह ॥ ४७८ ॥
करि समाज ते स्वर भरत, बहु मृदंग धुनि होत ।
अनवत बाजन सखिन ले, प्रथम करत सुरस्त्रोत ॥ ४७९ ॥

अर्थ—नित्त सदैव दोउ प्राणप्यारे साथ ही व्यालू करते हैं पर
कभी २ श्री सियजी आनंद में भर कर स्वयं श्री राघवजी को परोस
कर व्यालू कराती हैं ॥ ४७० ॥

गौ का परम सुगंधित मिश्री सीतल तरावट वस्तुओं से मिश्रित
दूध अनेकों प्रकार से पयशाला की सखियों ने बना २ कर तैयार कर
रक्खा है ॥ ४७१ ॥

इन पय शाला की सखियों ने जोना प्रकारों का (भातिन २ का)
सुगंधित दूध स्वर्ण कटारों में भर २ कर श्री प्राण प्यारेन के सन्मुख
रख दिया ॥ ४७२ ॥

और परम आनंद रूपी रस में बढ़ो हुई (भोजन की विनय
करती हैं) सुन्दर कपड़े का ठपजन चँवर करती हुई चारों ओर से
सेवा में उपस्थित हो विनय करती हैं कि हे सरकार जी यह दूध ऐसा
है और यह ऐसा है इसे लीजिये इसे ग्रहण कीजिये इत्यादि ॥ ४७३ ॥

उन सखियों की रुचि देख २ कर श्री जुगल सरकारजी दूध पान करते हैं और अपने हस्त कमलों से अपनी परिकरन को प्रसादी स्वरूप प्रदान करते हैं ॥ ४७४ ॥

इस प्रकार ब्यालू कर नाना प्रकार के दूध पान कर अर्थात् नाना सुख करके दोऊ श्री प्राणवल्लभ जी सहित परिकरों के आचमनादि कर ताम्बूल इत्र सेवादि ग्रहण कर आनंदित चित्त से श्री कनक भवन को पधारते हैं ॥ ४७५ ॥

फिर परम विचित्र सुखयान पालकी पर चढ़ कर श्री सिय जी के साथ श्री प्राणवल्लभ जी सहित परिकरन के नृत्यशाला (रासकुँज) को आवते हैं ॥ ४७६ ॥

ज्योंही श्री सरकारों का आगमन होता है त्योंही रासकुँज की सखियाँ भाँतिर का सिंगार बना कर शीघ्र-कुँज में एकत्रित होगई ॥ ४७७ ॥

इन सखियों ने आकर पृथ्वी में माथा धर यथाविधि जुहार की और हाथों को जोड़ श्री प्राणवल्लभ जी के मुखाम्बुज की ओर ताकने लगीं तब श्री जानकीवल्लभ रासके श्वर प्रभु ने उनको अपना नृत्य गायन चातुर्य प्रगट करने के लिये आज्ञा दी—कि गाओ बजाओ अपनी २ चातुर्यकला प्रगट करो इत्यादि ॥ ४७८ ॥

तब वे समस्त परिकर आज्ञा पाकर अपने २ नृत्य गान का सब समाज के सहित साज सजि कर प्रथम स्वर का साधन कर स्वर भरने लगीं—बहुत प्रकार की मृदंग ध्वनि हो रही है तब नाना प्रकार के अनेकों बाजों को सखियों ने ले २ कर बजा २ कर अपने २ स्वरों को एक स्वर में सम करके मिलाया अर्थात् समस्त स्वरों को एक धारा में प्रवाहित किया ॥ ४७९ ॥

चौ०—छंद गीत बहु रागन करहीं ।

निज २ गुण नृत्यत संचरहीं ॥ ४८० ॥

सांगीतादि नृत्य बहु कीन्हीं ।
 कला अनेक राग रस भीन्हीं ॥ ४८१ ॥
 जिनहिं देख रंभादिक नारी ।
 अचरज पाय करत मनुहारी ॥ ४८२ ॥
 दंपति एक सिंहासन राजै ।
 चँवर छत्र लिये अलीं बिराजै ॥ ४८३ ॥
 देखि २ दंपति मुसकाहीं ।
 रोझि देत बहू तिनहिं सराहीं ॥ ४८४ ॥
 पान दीन्ह तिन शिर धरि लीन्हा ।
 निज परिकर कहं आयुस दीन्हा ॥ ४८५ ॥
 श्री सहजा उठि यंत्र सुधारै ।
 चन्द्रकला निज वाद्य सवारै ॥ ४८६ ॥
 रसमंजरी सिंगार करि आई ।
 अमितकला गुण निपुण सुहाई ॥ ४८७ ॥
 करि प्रणाम तेहि राग अलापी ।
 निज २ सबन रागनी थापी ॥ ४८८ ॥
 परिकर युत सब रूप सुहाये ।
 मानहु राग महल भरि छाये ॥ ४८९ ॥

अर्थ—तब अनेकों प्रकार के छंद, गीत और राग रागनियों को गा २ कर नृत्य करती हुई वह समस्त सखियां अपने गुणों को प्रकाशित करने लगीं ॥ ४८० ॥

और इस प्रकार से राग रस में भीग कर उन्होंने बहुत तर २ की नृत्य गान की कलायें नृत्य गान करते २ दिवाईं ॥ ४८१ ॥

जिनके सांगीत नृत्य गानादि कलाओं को देख सुनि कर देवांगनायें रंभोदिक देवलोक की स्त्रियां आश्चर्य में होगईं अर्थात् लज्जित हो अपने नृत्य गानादि को तुच्छ समझ कर मनुहारी करनेलगीं (कि हमारी गति नहीं कि इनके सदृश नृत्य गान कर सकें) ॥ ४८२ ॥

श्री प्रिया प्रीतमजी एकही रतन जड़ित सिंहासन पर बिराजमान हैं और तीनों ओर सखियां चँवर छत्रादि नित्ये परम शुभाभित हो रही हैं ॥ ४८३ ॥

इन सखियों का नृत्य गानादि देख सुनि कर दोउ श्री प्राण बल्लभ जी मुसकाते हैं और प्रसन्न होते हैं और उनके गाने नृत्य करने पर अति प्रसन्न हो २ कर उनकी प्रशंसा करते हुये उनको बहुत सी पारितोषकें (परम प्रसन्न हो भूषण वसनोदिक) देते हैं ॥ ४८४ ॥

उपरोक्तानुसार प्रसन्न हो ज्यों ही श्री प्राण प्यारे उनको पान बीरियां अपने हस्त कमलों से देते हैं त्योंही वे अति प्रसन्न हो सादर नम्र भाव से हर्ष पूर्वक लेकर उन बीरियों को शिर और नेत्रों से लगा लेती हैं तब श्री मिथिलेशानंदिनी जी अपने मिथिलाबासी परिकरन को आज्ञा देती हुई कहने लगीं कि हे सखियो तुमभी अपना नृत्य गान कलादि प्रगट करो-ऐसी श्री किशोरीजी की आज्ञा पाकर ॥ ४८५ ॥

(आज्ञा पाय) श्री सहजा जी सहज स्वभाव से तुरंत बीणाको लेकर स्वर भग्ने लगी और श्री चन्द्रकलाजी अपने मृदंग वाद्य को लेकर स्वर सम्हारने लगी ॥ ४८६ ॥

और भी मिथिलाबासी सखियां अपने २ वाद्यों को सुधार २ कर तैयार होगईं-कि यह रसमंजरी भी (श्री स्वामीजी अपने को कहते हैं इनका अतरंग आत्म संबंधी रसमंजरी ही नाम है)

जो अमित नृत्य गान कलादि में अति कुशल शोभित हैं अपना सुन्दर
सिंघार कर नृत्य गान करने के लिये आगई ॥ ४८७ ॥

रसमंजरीजी ने दोउ श्री प्राणप्यारे सरकारजी को प्रणाम कर
अपने राग को अलापना प्रारंभ किया कि समस्त परिकर भी अपनी
अपनी रागनियों को अलापने लगे ॥ ४८८ ॥

तब वहां ऐसा विदित होने लगा कि मानो समस्त राग-रागिनी
सुन्दर स्वरूप धारण कर साक्षात् शोभायमान हो रहे हैं और सारे
महल में राग-रागनों छारहीं हैं ॥ ४८९ ॥

चौ०—उठत तरंग रंग भयो भारी ।

मुख मुचंग धुनि नृत्य सुधारो ॥ ४९० ॥

राग केदारो रुचि उपजावत ।

पुनि विहाग कोउ सोरठ गावत ॥ ४९१ ॥

पुनि कोउ मिलि एक लीला कीनी ।

रचि विवाह बेदी रँग भीनी ॥ ४९२ ॥

कलश थापि करि होम विधाना ।

प्रथम भयो जेहि विधि सुख नाना ॥ ४९३ ॥

सो दिन सुधि कर यह सुख देखी ।

देत भांवरीं ललित विशेषी ॥ ४९४ ॥

पंच शब्द अति मंगल गावैं ।

रस लीला दंपतिहिं रिभावैं ॥ ४९५ ॥

यह सुख मगन अर्ध निशि जाई ।

चांदनि छिटक रही छवि छाई ॥ ४९६ ॥

कहु निज छवि प्यारी कह देहीं ।
 आप प्रीति करि सो छवि लेहीं ॥ ४६७ ॥
 अंग २ प्रति रचति अलीगन ।
 प्रिया रूप धरि हौत मुदित मन ॥ ४६८ ॥
 कहुं पुनि निज छवि लेत दुलारो ।
 निज प्रिय सहित गर्व गुण गारो ॥ ४६९ ॥
 मानादिक लीला बहु करहीं ।
 पुनि मनुहार मोद सुख भरहीं ॥ ५०० ॥
 पुनि बहु अंग राग दे आछै ।
 इक छवि दंपति रूपहिं काछै ॥ ५०१ ॥

अर्थ—नाना प्रकार के नृत्य-गानादिकों की अनेकों तरंगे भांति
 भांति की उठरही हैं इससे बड़ा आनंद हो रहा है (मचरहा है) कोई
 मुखों से मुचंग (एक बाजा जो मुंह से बजाया जाता है) बजा रहीं हैं
 कोई गाय २ नृत्य करती हुई सुधार २ के कलायें दिखा रहीं हैं ॥ ४९० ॥

कोई रुचि उपजाने वाला राग केदार गा रही है कोई बिहाग
 और सोरठ आदि गाना गा रही हैं अतः इस प्रकार से रासकुँज में
 अति रंग अर्थात् आनंद मच रहा है ॥ ४९१ ॥

फिर कुछ सखियां मिल कर एक बिवाह लीला करने लगीं—
 यह समस्त सखियां सब कार्य करने कराने में अति कुशल परम बिदुषी
 हैं अतः प्रथम बिवाह की यज्ञ वेदिका को बनाया श्री युगल सरकारजी
 के बिवाह रंग में भीगी हुई उन्होंने सुन्दर मणि जड़ित कंचन का कलश
 बेदी के समीप स्थापन किया (उसी में कोई पंडित बनी कोई नाई कोई
 माली) ॥ ४९२ ॥

फिर कलस स्थापन कर जिस प्रकार प्रथम विवाह में विधान पूर्वक हवनादिक नाना प्रकार के मांगलिक कार्य सुख हुये थे उसी प्रकार सब विधान पूर्वक हवनादिक कराये ॥ ४९३ ॥

इस सखियों की विवाह लीला सुख को देख कर श्री युगल प्राणप्यारे प्रथम के निज विवाह के दिन की सुधि कर परम सुख पूर्वक प्रसन्न हो सुन्दर भावरीं देते हैं ॥ ४९४ ॥

समस्त सखियां पंच शब्दों से मंगल गान करती हैं (विवाह समय के गीत पंच शब्द गीत कहलाते हैं) विवाह के और भावरीं समय के दोनों ओर से सखीं गन ही साकोच्चार उच्चारन करती हैं—इस प्रकार यहां रस मय लीला करके परिकर गण श्री युगल प्राणप्यारेन को रिक्ताते हैं अर्थात् प्रसन्न करते हैं ॥ ४९५ ॥

यही विवाह लीला रस सुख में सहित सखियों के श्री युगल सरकार जी मगन हो रहे हैं और इसी प्रकार रास बिहार लीला करते २ आधी रात व्यतीत होगई चन्द्र देवजी की चाँदनी अति छबि से पूर्ण सारे जग मंडल पर छाई हुई अति शोभा दे रही है जिसमें श्री युगल ललन की छवि को प्राप्त कर चाँदनी परम सुशोभित हो रही है ॥ ४९६ ॥

उसी समय में कभी श्री राघवजी अपनी छवि को श्री सियजी को दे आप स्वयं उनकी छवि धारण करते हैं अर्थात् आप श्री सियजी को अपने रूप के समान अंगराग धारण कराकर (अपनी पोसाग) पुरुष का शृंगार करते हैं (श्री प्रियाजी श्री प्रीतमजी इव दर्शने लगती हैं) और कभी श्री सियजी के रूप रंग इव आप अपने अंग में अंगराग धारण कर नायका का सिंगार करते हैं (उसी प्रकार यह भी श्री सिया इव दर्शने लगते हैं) और इस तरह हँसते हँसाते रहस लीलादि करते हैं ॥ ४९७ ॥

कभी अलीगन श्री प्रीतमजी को अंग २ प्रति श्री प्रियाजी कैसे

भूषण वसन धारण कराती हैं श्री प्राणवल्लभजी श्री प्रियाजी का रूप धारण कर भीतर बाहर से आनन्द में डूब जाते हैं और समस्त सखियाँ भी परम आनन्दित होती हैं ॥ ४९८ ॥

कभी फिर अपनी २ छवि दोनों दुलारे प्राण प्यारे धारण करते हैं और जब अपनी प्रिया सहित आप नृत्य गान में तत्पर होते हैं तब समस्त गंधर्व विद्याभिमानीयों के गर्व गिरजाते हैं अर्थात् गर्व नहीं रहजाते दोनों २ रूप बन कर दोनों रूप से बढ़ कर एक होजाते हैं श्री किशोरीजी अपने रूप से हैं ही और श्री प्राणप्यारे को अंगराग दे कर (सखी रूप बनाकर दोनों प्राणप्यारे एक रूप होते हैं ॥ ४९९ ॥

मानादिक लीलायें श्री युगल सरकारजी बहुत प्रकार से करते हैं अर्थात् जब श्री सियजी मान कर बैठती हैं तब अपने विनय प्रार्थना अस्तुति आधीनादि करके श्री प्रीतमजी श्री प्रियाजी को प्रसन्न कर मान छुड़ा कर उनको मोद दे सुख में भर देते हैं और इस प्रकार उनको खुशी कर स्वयं मोद और सुख में भर जाते हैं और फिर दोनों प्रिया प्रीतम जी मिल कर आनंदित हो रहस करने लगते हैं—कभी श्री प्रीतमजी श्री प्रियाजी का रूप धारण कर श्री प्रियाजी रूप श्री प्रीतमजी से मान कर मान लीला करते हैं तब श्री प्रियाजी रूप श्री प्रीतमजी प्यारे श्री प्रिया रूप से मन हारि कर ऊपर भीतर से आनंद सुख में जिस प्रकार भरें सोई करते हैं अर्थात् जितने रास लीलो के अङ्ग हैं सो सब करते हैं—इस प्रकार दोउ श्री प्राण जीवनजी नाना प्रकार की बहुत लीलायें करते हैं ॥ ५०० ॥

पुनः कभी बहुत प्रकार के अंगराग परम सुगंधित परस्पर सर्व अंगों में लगा कर दोनों श्री प्राणवल्लभजी एक ही रूप धारण करते हैं अर्थात् फिर कभी श्री प्रीतमजी की इच्छा होती है कि हम श्री प्रियाजी को रूप धारण कर सखी स्वरूप से श्री प्रियाजी के साथ बिहरें—श्री प्रीतमजी की ऐसी इच्छा जान प्रिय सखीगन उत्तमोत्तम अंगराग लगा

कर श्री प्रीतमजी को गौर बनाती हैं और श्री प्रीतमजी का श्री प्रियाजी के समान सब भूषण बसन धारण कराकर सर्व सिंगार करती हैं ॥५०१॥

चौ०—अति सुख पाय करत रस केली ।

दंपति रुख लख तिय अलबेली ॥५०२॥

पुनि प्रभु द्रग आलस छवि छाई ।

सो लखि अलिन समाज उठाई ॥५०३॥

सयन शालि तिन खबर जनाई ।

तहँकि अलियन सेज बनाई ॥५०४॥

रंगमहल शोभित छवि छावा ।

प्रथम फरस जर बफत करावा ॥५०५॥

पलंग जड़ित मणि सुभग सुहावा ।

जथा प्रथम में वर्ण सुनावा ॥५०६॥

तेहि ऊपर बहु सुमन सवांरे ।

विविधि भांति मेवा रुचि कारे ॥५०७॥

करि समाज पिय खवरि जनाई ।

चढ़ि सुखपाल चले रघुराई ॥५०८॥

चारिहु दिशा अलिन के यूथा ।

छत्र चँवर लिये सखिन बरूथा ॥५०९॥

अर्थ—इस प्रकार दंपतिजी एक छवि होकर (सखी २ होकर) सिंगार रस मयी समस्त रस केलि सुख पूर्वक करते हैं ॥५०२॥

श्री जानकी जीवनजी के कमल नेत्रों में आलस छा रहा है अर्थात् उनके यह आलसमयी नेत्र परम शोभा को प्राप्त हो रहे हैं— सखियां यह देख कर कि भी सरकारों के नयनों में आलस की छवि छा रही है उन्होंने लीलाओं का बिसर्जन कर सयनकुंज की सखियों को सरकार की अवाई की सूचना दी ॥ ५०३ ॥

जब सखियों ने सयनकुंज की सखियों को भी सरकारी अवाई की सूचना दी जब सयनकुंज की सखियों ने सरकार की अवाई सुन भी प्राण प्यारे की सुन्दर सेज्या सजाई (सयनकुंज = रंग महल) ॥ ५०४ ॥

रंग महल अर्थात् सयनकुंज परम शोभित अति छवि पूर्ण प्रकाशित हो रहा है जैसा कि पूर्वोक्त सयनशालि वर्णन में वर्णन कर चुके हैं (जैसा हम प्रथम उत्थापन के समय में वर्णन कर आये हैं) कि पलंग के चारों ओर अति कोमल गद्दा की तरह फरस बिछा हुआ है जिसमें सोने के तारों का सुन्दर बिचित्र काम किया गया है जिस पर पैर रखते ही पैर धँस जाते हैं और उठाते ही फर्स फिर ज्यों का त्यों हो जाता है (जैसे रुई के ढेर में पैर धँस जाता है उठाने पर फिर रुई फूल आती है) ऐसा वफत फर्स स्वर्ण तारों से सुसज्जित बिछा हुआ है ॥ ५०५ ॥

उस फर्स पर मणि जड़ित सुन्दर पलंग शोभित हो रहा है जिस पर सखियों ने सुन्दर सेज सजाई है जैसा कि मैं (ग्रंथकारजी कहते हैं कि जैसा मैं) पहले वर्णन कर चुका हूँ ॥ ५०६ ॥

तिस पलंग के ऊपर सुन्दर अनेकों प्रकार के सुगंधित फूलों की पाखुरीन से सेज सजाई गई है और उस पलंग के चारों ओर चौकियों पर सुन्दर कंचन के थारों में भरी हुई बिबिध प्रकारकी रसमयी स्वाद युक्त रुचि बढ़ाने वाली मेवायें रक्खी हुई हैं ॥ ५०७ ॥

सयन शालि को सब सौज समाज की तैयारी होजाने के बाद श्री प्रीतमजी से सखियों ने जनाया कि हे प्राणप्यारे दोउ सरकारनजी

का सयनकुँज को चलनो होय । ऐसा सुनते ही पालकी यानी सुखयान
पर चढ़ कर श्री जानकी वल्लभजी सयनागार को चले ॥ ५०८ ॥

चारों ओर से सखियों के समूह कोई छत्र कोई चँवर सेवा
उपयोगी वस्तुयें लिये शोभित हो रहे हैं ॥ ५०९ ॥

चौ०—कोई नकीब हूँ कोउ बंदीजन ।

बिरद बदत कोउ जात मुदित मन ॥ ५१० ॥

यह बिधि रंगमहल प्रभु आवत ।

बचन रसभरे प्रियहिं सुनावत ॥ ५११ ॥

जाय सिंहासन बैठे दोऊ ।

आरति सजन लगीं सखी कोऊ ॥ ५१२ ॥

॥ दोहा ॥

पुनि तहँ ते अलि बिदाकर, लेत जम्हाई लाल ।

आठ मंजरीं संग ले, चले मत्त गज चाल ॥ ५१३ ॥

चौ०—जाय पलंग बैठे रस भीने ।

सयेन करन की दिशि रुख कीने ॥ ५१४ ॥

पौढ़े लाल प्रिया पद लालत ।

रस मंजरी चँवर शिर चालत ॥ ५१५ ॥

रसमंजरी चरण तब लागी ।

सिय आयसु शिर धरि अनुरागी ॥ ५१६ ॥

॥ दोहा ॥

जबलग दंपति सयन करि, पदा दीन भुकाय ।

निज २ ठाँव अलीं सकल, भीने शब्द सुनाय ॥ ५१७ ॥

अर्थ—कोई सखियां नकीब कोई बदीजन बनी हुई सवारी के आगे २ अति हर्ष पूर्वक प्रसन्न चित्त से श्री युगल सरकारजी का विरद सुजस, प्रताप और दयालतादि पुकार २ कर कहती हुई चली जाती हैं ॥ ५१० ॥

इस प्रकार से श्री प्राणप्यारेजी रंगमहल में आते हैं और श्री प्रियाजी से स्नेह रस पूर्ण रसमयी बार्ता करते हैं ॥ ५११ ॥

सयनकुँज में पहुँच कर श्री युगल सरकार परम सुन्दर मणि जड़ित सिंहासन पर आ कर बिराजते हैं जो सयनकुँज के अगाड़ी सभाकुँज में सुशोभित हो रहा है। जब आप बिराज गये तब कोई सखियां सयन आरती का समय देख कर सयन आंरती समस्त सौज सामग्री सहित सजि कर ले आईं और बिधि पूर्वक आरती कर यथोचित पुष्प वर्षा न्योछावरि जुहारादि कर हाथ जोड़ परम प्रेम से दर्शन करने लगीं ॥ ५१२ ॥

यहां और अलिगनों को बिदा कर अर्थात् अपने २ स्थान जाने की आज्ञा देकर श्री प्रीतमजी सयन का दर्शाव सूचित करने के लिये जम्हाई लेने लगे और फिर अष्ट मंजरींन को साथ लेकर मतवाले मतंग की तरह मंद २ चाल से श्री प्रियाजी के सहित श्री प्रीतमजी पलंग की ओर चले ॥ ५१३ ॥

और वहां पहुँच परम रमणीक मणि जड़ित पलंग पर बिराज आलस रँग में भीगे हुये सयन करने का रुख कर दोउ श्री प्राणप्यारे पौढ़ गये ॥ ५१४ ॥

दोउ श्री प्रिया प्रीतमजी के पौढ़जाने पर श्री रसमंजरीजी (श्री नाभा स्वामीजी) परम प्रेम पूर्वक सुन्दर श्री युगल चरण कमलों को चांपने टुलारने सेवा करने लगीं और एक रूप से चँवर सेवा करने लगीं (परिकरगन कई रूप धारण कर सकते हैं) पुनः श्री प्रियाजी ने

श्री रसमंजरीजी को आज्ञा दी कि जाओ सयन करो अब हम सयन करेंगे ॥ ५१५ ॥

श्री प्रियाजी की आज्ञा पाय श्री रसमंजरीजी अति अनुराग पूर्वक चरण कमलों में लग यथोचित जुहार करती हैं ॥ ५१६ ॥

और जब देखती हैं कि अब श्री युगल ललन का सयन होगया तब यह श्री रसमंजरीजी पलंग के चारों ओर की भीनी परदायें गिरा देती हैं और अपने २ पहरे पर समस्त अलीगन परम मनोहर भीने स्वर से सुन्दर शब्दालाप सुनाने लगती हैं अर्थात् निद्रा हेतु मंद २ स्वरसे सुन्दर गीतालाप करने लगती हैं ॥ ५१७ ॥

॥ दोहा ॥

यहि विधि प्रभु अहिक चरित, कह्यो यथा मति गाय ।
चूक क्षमा कीजो सुजन, सुनियो प्रीति लगाय । ५१८ ।

अर्थ—श्री नाभा स्वामीजी कहते हैं कि सज्जन जन इस प्रकार (अर्थात् उपरोक्तानुसार) मैंने अपनी तुच्छ मति अनुसार यथा शक्ति अति सूक्ष्म रूप से श्री युगल प्रभु श्री जानकी बल्लभजी के एकान्तिक अष्टयाम चरित्रों को वर्णन किया है क्योंकि श्री युगल सरकारजी के अष्टयाम चरित्रों को पूर्णतया वर्णन करने की किसकी सामर्थ्य है ।
क्योंकि—

रामचरित अति अमित मुनीशा । कह न सकहिं शत कोटि अहीशा ॥

(श्री रामायण गो० तु० दा० जी)

अतः जो श्री युगल प्राणजीवनजी का चरित्र श्री आचार्यजी के मुख सुना है सो भी अपनी अल्प मति अनुसार कह कर प्रार्थी हूँ

कि श्री प्रभू के अपार चरित्रों का सूक्ष्म रूप से दिग्दर्शन कराने की जो चूक है अर्थात् जहां तहां जो त्रुटियां रह गईं हों अथवा जहां न कहते बना हो तो हे सुजन जन मेरी दिठाई को क्षमा कर सुधार के श्रीजानकी जीवनजी सर्वोपरि प्रभू का सर्वोत्तम चरित्रों को प्रीति पूर्वक पटन अधरण कीजियेगा क्योंकि यही परम धर्म है । (श्री स्वामीजी यह दिखावते हैं कि सर्वोपरि युगलसरकार में प्रीति करना यही जीव का सर्वोपरि परम धर्म है) ॥ ५१८ ॥

॥ इति ॥

कवित्त

परम रहस्य गुप्त सुन्दर बिसाल मंजु, जामें लियराम को अनूप गुण ग्राम है ॥१॥ चारौ फलदायक है सन्तन के लायक है, रसिकसुजानन को कैसो विश्राम है ॥२॥ नाभा उर सिन्धु पारिजात यों प्रगट भयो, पूरै मन काम सर्व ऐसो अभिराम है ॥३॥ नीको कर टीको सुपरमानंद रासि तौन, भक्तजन हेतु ये विचित्र अष्टयाम है ॥ ४ ॥

(रामदूतशरण)

